ISSN : 2456-8856

पंजीयन संख्या RNI No.: MPHIN/2002/9510 डाक पंजीकृत क्रमांक मालवा डिवीजन/204/2021-2023 उज्जैन (म.प्र.)

UGC Care Listed and Peer Reviewed Referred Bilingual Monthly International Research Journal

प्रेषण दिनांक 30 पृष्ठ संख्या 28

आश्वस्त

वर्ष 25, अंक 230 दिसम्बर 2022

शत-शत नमन

संपादक – डॉ. तारा परमार

भारती दलित साहित्य अकादमी मध्यप्रदेश, उज्जैन की अन्तर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका

आश्वस्त

वर्ष : 25 अंक 230
दिसम्बर 2022

आश्वस्त

(सन् 1983 से निरंतर प्रकाशित)

RNI No.: MPHIN/2002/9510
ISSN : 2456-8856

भारती दलित साहित्य अकादमी मध्यप्रदेश, उज्जैन (पंजीयन क्रमांक 2327 दिनांक 13/05/1999) की मासिक पत्रिका

संस्थापक सम्पादक
डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी

संरक्षक
सेवाराम खाण्डेगर
11/3, अलखनन्दा नगर, बिड़ला हॉस्पिटल के पीछे,
उज्जैन मो.: 98269-37400

परामर्श
आयु. सूरज डामोर IAS
पूर्व सचिव-लोक स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण वि.
म.प्र.शासन, भोपाल मो. 094253-16830

सम्पादक
डॉ. तारा परमार
9-बी, इन्द्रपुरी, सेठी नगर, उज्जैन-456010
मो. 94248-92775

सम्पादक मण्डल :
डॉ. जयप्रकाश कर्दम, दिल्ली
डॉ. खन्नाप्रसाद अमीन, गुजरात
डॉ. जसवंत भाई पण्ड्या, गुजरात
डॉ. शैलेन्द्र कुमार शर्मा, म.प्र.

Peer Review Committee
डॉ. श्रवणकुमार मेघ, जोधपुर(राजस्थान)
प्रो. दत्तात्रय मुरुमकर, मुंबई (महाराष्ट्र)
प्रो. रश्मि श्रीवास्तव, उज्जैन (म.प्र.)
डॉ. बी.ए.सावंत, सांगली (महाराष्ट्र)

कानूनी सलाहकार
श्री खालीक मन्सूरी एडव्होकेट, उज्जैन

अनुक्रमणिका

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	अपनी बात	डॉ. तारा परमार	03
2.	दलित महिलायें : अस्तित्व और अधिकार	डॉ. जितेन्द्र कुमार	04
3	वैश्वीकरण, महिला अधिकार व महिला सशक्तिकरण : एक अध्ययन	अरूण कुमार	07
4	दलित कहानी और संघर्ष	डॉ. शैलजा हेच.जी.	10
5	दिव्यांगजन हेतु समावेशी शिक्षा में डिजिटल लर्निंग : कोविड 19 की परिस्थितियों के संदर्भ में	कृष्ण कुमार पाठक	13
6	'शिकंजे का दर्द' में स्त्री अस्मिता के प्रश्न	निर्मल सुवासिया (शोधार्थी)	18
7.	बेरोजगारी पर कोविड-19 व अन्य कारकों का प्रभाव	राकेश मोखरा डॉ. कृष्ण परूथी डॉ. संदीप कुमार	21
8.	हिन्दी लघुकथा में स्त्री विमर्श	डॉ. मालती बसंत	24
9.	आंबेडकरवादी हाईकु	दामोदर मोरे	26

UGC Care Listed Journal

खाते का नाम – आश्वस्त (Ashwast)
खाते का नं.– 63040357829
बैंक – भारतीय स्टेट बैंक,
शाखा– फ्रीगंज, उज्जैन (Freeganj, Ujjain)
IFS Code - SBIN0030108

Web : www.aashwastujjain.com
E-mail : aashwastbdsamp@gmail.com

एक प्रति का मूल्य	:	रुपये 20/-
वार्षिक सदस्यता शुल्क	:	रुपये 200/-
आजीवन सदस्यता शुल्क	:	रुपये 2,000/-
संरक्षक सदस्यता शुल्क	:	रुपये 20,000/-

विशेष : सम्पादन, प्रकाशन एवं प्रबंध अवैतनिक तथा पत्रिका में प्रकाशित विचारों से सम्पादक-मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है। विवाद की स्थिति में न्यायालय क्षेत्र उज्जैन रहेगा।

अपनी बात

बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर का सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक चिंतन यथार्थपरक और मानवता के लिए था। समता, स्वतंत्रता, बंधुत्व, मानवीय गरिमा, आत्म सम्मान एवं सामाजिक न्याय उनके दर्शन का प्रमुख लक्ष्य रहा है जिसके लिये उन्होंने ऐसी सामाजिक संरचना की संकल्पना की थी – जिसमें प्रत्येक मनुष्य को अपना सर्वांगीण विकास करने का समान अवसर या अवसर की समानता प्राप्त हो।

वर्तमान परिदृश्य में संपूर्ण विश्व भूमण्डलीयकरण के दौर से गुजर रहा है। सम्पूर्ण जनमानस बाजारीकरण से ओत–प्रोत हो रहा है। इस परिवेश में शैक्षिक मूल्य, सामाजिक मूल्य और नैतिक मूल्य को अपनाए बिना शांति की कल्पना करना संभव नहीं है। विवेक, नैतिक व सामाजिक मूल्यों के बोध से ही सामाजिक विषमता और अन्याय से मुक्ति के प्रश्नों के हल खोज सकते हैं। क्या यह एक विरोधाभास और विडम्बना नहीं है कि शरीर से हम देशवासी इक्कीसवीं सदी में समता और न्याय, मानवाधिकार और शोषितों की चेतना, स्त्री मुक्ति, राष्ट्रीय चेतना, विश्व बंधुत्व के आदर्शों के युग में रहते हैं, लेकिन मन और व्यवहार से मध्ययुगीन संस्कारों–छुआछूत, जात–पांत आर्थिक शोषण, सामाजिक अन्याय, धर्मान्धता, साम्प्रदायिकता तथा क्षेत्रीयता की भावना से अभी भी त्रस्त व पीड़ित हैं।

संतों और समाज सुधारकों को जन्म देने वाले इस देश में ही सामाजिक असमानता, शोषण और अन्याय– उत्पीड़न घटने के बजाय बढ़ ही रहा है। भारत की महान सांस्कृतिक विरासत के स्थायी मूल्य भारतवासियों को प्रेरणा देते रहे हैं जिसमें बुद्ध के 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' का सिद्धांत, नानक, कबीर, संत रविदास, महात्मा फुले आदि की करुणा और समतामूलक मानवतावादी वाणी से जनसाधारण के अधिकाधिक निकट जाने की ही प्रेरणा मिलती है। निःसंदेह मूल्यों, मान्यताओं, आदर्शों और चारित्रिक गुणों को न तो आयातित किया जा सकता है और न ही उधार लिया जा सकता है। मानव और राष्ट्र के चरित्र का निर्माण बिना साधना, तपस्या के संभव नहीं है।

संविधान शिल्पी बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर का विचार–दर्शन संपूर्ण मानव समाज के लिये उन मूल्यों को स्थापित करना है जो 'स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व' पर आधारित है। इसलिये उसमें मानव कल्याण की भावना सर्वोपरि है। एक व्यक्ति एक मूल्य, सामाजिक लोकतंत्र का आधार बिन्दु है। अतः वह शब्द प्रमाण और ग्रंथ प्रमाण की अवधारणा को अस्वीकार करता है। यह एक ऐसा सामाजिक दर्शन है जो समस्त शोषित–उत्पीड़ित और उपेक्षित मानव की मुक्ति के लिये प्रयत्न करता है।

भारत के संदर्भ में यह सही है कि जाति भारतीय समाज संरचना का प्रमुख कारक है जिसको समाप्त किये बिना बहुजन समाज सहित समस्त शोषित– उत्पीड़ित–वंचित समाज के लोगों की मुक्ति असंभव है। बाबा साहेब के दर्शन का मुख्य उद्देश्य मानवता की स्थापना करना है जिसमें जाति, लिंग, धर्म, वर्ण और समुदाय आदि के आधार पर भेदभाव के लिए कोई स्थान नहीं है। उनका मानवतावाद 'स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व' लोकतांत्रिक मूल्यों में समाहित है।

– डॉ. तारा परमार

दलित महिलायें : अस्तित्व और अधिकार

– डॉ. जितेन्द्र कुमार

शोध सारांश – मानव अधिकारों के दमन एवं शोषण की समस्या वैश्विक समाजों में ऐतिहासिक व सार्वभौमिक रूप से पायी जाती है। इस सन्दर्भ में भारतीय समाज किसी अन्य से जुदा नहीं है। भारतीय समाज के सन्दर्भ में यह तार्किक एवं निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि कुछ सामाजिक वर्ग व सम्प्रदाय मानवाधिकारों के हनन के ज्यादा शिकार आदिकाल से रहे है और वर्तमान में इस समस्या से बुरी तरह प्रभावित हैं। ऐसा ही सामाजिक वर्ग दलित समाज है। दलित समाज में भी दलित महिलायें जो सामाजिक संस्तरण में सबसे निचले पायदान पर आती है, उनकी प्रस्थिति न केवल उच्च जातियों की महिलाओं से दयनीय है वरन् स्त्री–पुरूष वर्गीकरण एवं पितृसत्तात्मक व्यवस्था के कारण उनकी स्थिति अत्यन्त कमजोर एवं संवेदनशील है। यह शोध–पत्र दलित महिलाओं के अस्तित्व एवं मानवाधिकारों का एक विश्लेषण प्रस्तुत करता है ।

मुख्य शब्द – अधिकार, दलित, जाति, महिला, शोषण आदि।

प्रस्तावना–भारत में दलित महिलायें आदिकाल से ही मौन संस्कृति में जी रही है। वे अपने शोषण, उत्पीड़न व होने वाली बर्बरता के लिए मूक दर्शक बनी हुयी है। लिंग आधारित सत्ता सम्बन्धों ने दलित महिलाओं के अधिकारों का हनन करने के साथ–साथ उनके शोषण को भी बढ़ावा दिया है। वर्तमान समय में दलित महिलाओं का अपने शरीर, जीवन व कमाई पर कोई अधिकार नही है । नारीवादी शिक्षाविद् ने दलित महिलाओं को 'दलितों के बीच दलित' कहा है। दलित महिलाओं की समस्यायें अन्य वर्गों की महिलाओं से अलग है। इनको बाहर से लेकर घर की चारदीवारी तक हिंसा एवं उत्पीड़न का सामना करना पड़ता है। अगर वो पानी भरने गाँव से दूर या नदी, तालाब की ओर जायें तो उन्हें घेरकर छींटाकशी की जाती है एवं भूमिहीन दलित परिवारों की उच्च जातियों पर निर्भरता के कारण दलित महिलाओं का शारीरिक शोषण भी किया जाता है ।

स्वतन्त्रता के सात दशक बाद भी दलित महिलाओं को निरन्तर भेदभाव, हिंसा व सामाजिक बहिष्कार का सामना करना पड़ता है। गरीबी, महिला व दलित रूपि ये तीनों कारक उनके शोषण व अधिकारों के हनन में प्रमुख भूमिका निभाते हैं। भारतीय दलित महिलाओं की गुलामी एवं अधिकारों के हनन की अदृश्य जंजीरे हमेशा से ही पुरुष वर्ग, जाति व्यवस्था और धर्म के हाथों में रही है। दूसरे शब्दों में कहें तो जाति व्यवस्था पर आधारित समाज एवं पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था में शक्ति के जितने रूप व संस्थान है वे सब या तो दलित महिलाओं का शोषण करते हैं या फिर उनका इस्तेमाल करते हैं । दलित महिलाओं को पितृसत्तात्मक शोषण के साथ–साथ जातिगत असमानता की प्रताड़ना भी झेलना पड़ती है जिससे उनके सर्वांगीण विकास में अनेकानेक बाधायें उत्पन्न होती रहती है। जातिगत असमानता और अधिकारों के हनन को झेलते हुये दलित महिलाओं में एक अलग प्रकार का रोष तथा प्रतिक्रियात्मक भावना उत्पन्न हो जाती है। बहुधा यह देखा गया है कि दलित महिलाऐं अपने विकास के मार्ग में उच्च जातियों द्वारा किये जाने वाले असमान एवं भेदभाव परक व्यवहार को बहुत बड़ा बाधक और अधिकाधिक हानिकारक मानती है। इन्ही अवरोधों के चलते इनके समक्ष बहुत सारी चुनौतियाँ खड़ी हो जाती है, जो उन्हें स्वयं का सम्पूर्ण विकास करने के सन्दर्भ में बहुत बड़ा अवरोधक सिद्ध होती है। मोहनदास नैमिशराय "दोनों गालों में थप्पड़" में कहते हैं कि दलित महिलाऐं अपने अधिकारों के हनन व शोषण के चक्र में इस प्रकार से फंसी हुई है कि प्रत्येक स्तर पर उनका शारीरिक, मानसिक व दैहिक स्तर पर वृहद तरीके से इनके साथ अन्याय होता है ।

वर्तमान समय में नारीवादी आन्दोलनों, उदारवादी दृष्टिकोण तथा स्वतन्त्रता व समानता का सिद्धान्त लागू हो जाने के कारण सरकार द्वारा इन्हें संवैधानिक संरक्षण प्रदान किया गया। भारतीय संविधान की प्रस्तावना में मानवाधिकार के मूलभूत मुद्दे को शामिल करते हुये दलित महिलाओं को पर्याप्त संरक्षण दिया गया। संविधान के अनुच्छेद 14 व 15 को देखा जाये तो यह पता चलता है कि संविधान की दृष्टि में प्रत्येक मनुष्य बराबर है तथा धर्म, वंश, लिंग, जाति या जन्म स्थान के आधार पर उनके बीच किसी भी प्रकार का भेदभाव नही किया जायेगा। अनुच्छेद 17 के अन्तर्गत छुआछूत का सम्पूर्ण निषेध किया गया। दलित महिलाओं को प्रदान किये गये सुरक्षा उपायों में सामाजिक सुरक्षा के अन्तर्गत अनुच्छेद 17, 23, 24 और 25(2B), आर्थिक सुरक्षा के अन्तर्गत अनुच्छेद 23, 24 व 46 शैक्षिक व सांस्कृतिक सुरक्षा उपाय-अनुच्छेद 15(4), राजनीतिक सुरक्षा के अन्तर्गत अनुच्छेद 243, 330 व 332 तथा सेवा सुरक्षा के अन्तर्गत अनुच्छेद 14 (4), 16 (4A), और 335 आता है। इसके साथ ही साथ महिला अधिकारों के दृष्टिकोण से राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग एवं राष्ट्रीय महिला आयोग का गठन काफी महत्वपूर्ण है।

राष्ट्रीय प्रावधानों के साथ ही साथ यदि हम दलित महिलाओं से सम्बन्धित अन्तर्राष्ट्रीय प्रावधानों पर नजर डाले तो पाते हैं कि नागरिक एवं राजनीतिक अधिकारों की अन्तर्राष्ट्रीय संविदा कई अधिकार प्रदान करती है। अनुच्छेद 8 द्वारा बंधुआ मजदूरी निषेध, अनुच्छेद 14 द्वारा सभी को कानून के समक्ष समानता, अनुच्छेद 26 नस्ल रंग, लिंग, भाषा, राजनीतिक या अन्य राय रखने के कारण राष्ट्रीय या सामाजिक मूल, सम्पत्ति, जन्म अथवा अन्य किसी सामाजिक स्थिति के आधार पर भेदभाव को समाप्त किया गया है। इसी प्रकार अनुच्छेद 26, 25(C), 19(1), 21, 14(3), 16 (1), 9 (1, 2, 3, 4) एवं 18 (1) ऐसे अधिकार प्रदान करते हैं जो दलित महिलाओं के नागरिक व सामाजिक जीवन से सम्बन्धित है।

इतना ही नहीं संयुक्त राष्ट्र संघ ने महिलाओं की स्थिति को ज्ञात करने के उद्देश्य से 1946 मे एक आयोग की स्थापना भी की । इसी आयोग के माध्यम से 1965 में महिलाओं के विरुद्ध भेदभाव उन्मूलन की घोषणा का मसौदा तैयार किया गया जिसे महासभा ने 1967 में स्वीकार किया ।

संविधानिक, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों एवं प्रावधानों के बावजूद भी वर्तमान समय में दलित महिलाओं के अधिकारों का हनन व्यापक स्तर पर जारी है। दलित महिलाओं के अधिकार हनन प्रक्रिया को हम दो रूपों में विभाजित कर सकते हैं। प्रथम— वे हनन है जो सौम्य प्रक्रति के है तथा दूसरे वे जो क्रूरता, हिंसा एवं जघन्य अपराध के रूप में अंजाम दिये जाते हैं। यदि हम नागरिक एवं राजनीतिक अधिकारों की बात करें तो पाते हैं कि शहरी एवं ग्रामीण दोनों ही क्षेत्रों में दलित महिलायें आज भी बंधुआ मजदूरी का शिकार है। 01 मई, 2020 के आँकड़ों के अनुसार भारत में करीब सवा तीन लाख बंधुआ मजदूरों की पहचान की गयी जिनमें बड़ी संख्या में दलित महिलायें थी। आज भी दलितों और विशेषकर उनकी महिलाओं को न तो पंचायतों में बैठने दिया जाता है और न ही उन्हें अपनी राय व्यक्त करने दिया जाता है और यदि कोई दलित महिला अपने अधिकारों का हवाला देकर ऐसा करने का प्रयास करती है तो उसे बदनाम करने की कोशिश की जाती है। इतना ही नहीं देवदासी व जोगिनी के रूप में इनका यौन शोषण आज भी जारी है। अनेक स्थानों पर यह पाया गया कि दलित महिलायें अपने भोजन के कारण मैला होने का काम करती है तथा जूठन खाने को मजबूर है । आज भी दलित महिलाओं को उच्च जातियों से अपशब्द सुनने पड़ते हैं, शारीरिक हमले सहने पड़ते हैं तथा उन्हें यौन हिंसा अपराध का शिकार बनाया जाता है एवं घरेलू हिंसा के द्वारा उनका उत्पीड़न किया जाता है।

सोसाइटी फॉर पार्टीसिपेटरी रिसर्च इन एशिया

2020 की रिपोर्ट के अनुसार वर्तमान समय में भी दलित महिला वर्ग को मजदूरी के लिए समान वेतन नहीं प्राप्त होता है। इसी तरह शिक्षा सम्बन्धी आँकड़े बताते हैं कि जहाँ 2011 की कुल आबादी में 64.6 प्रतिशत महिलायें शिक्षित थीं, वहीं दलित महिलाओं का शैक्षणिक प्रतिशत भाग 16.7 प्रतिशत था । इस प्रकार आज भी दलित महिलायें अनेकों प्रकार की समस्याओं को झेलने के लिए अभिशप्त है और पितृसत्तात्मक सोच, जातिगत भेदभाव, बाल–विवाह, अंधविश्वास, अशिक्षा, नशाखोरी की बढ़ती प्रकृत्ति, पारिवारिक हिंसा, मानसिक व शारीरिक शोषण, यौन उत्पीड़न आदि कारणों से उनकी समस्यायें दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। ये अनेकों प्रकार की कुंठाओं, हीनभावना व मानसिक विकारों से ग्रसित होकर न तो अपना सम्मानपूर्वक जीवन जी पाती है और न ही अपने व्यक्तित्व का सम्पूर्ण विकास कर पाती है।

निष्कर्ष–दलित महिलाओं की अस्मिता और अधिकारों पर दृष्टि डालने से यह ज्ञात होता है कि आदिकाल से ही दलित महिलायें अनेकानेक प्रकार से शोषण का शिकार रहीं है तथा इस भारतीय सामाजिक व्यवस्था में उनके मानवाधिकारों का निरन्तर उल्लंघन होता रहा है। वास्तव में हिन्दू सामाजिक व्यवस्था में दलित महिलाओं को इतना ही स्थान दिया गया जिससे उनकी सेवाओं का उपभोग उच्च जातियों के लोग कर सके। एक ओर दलित महिलाओं से शारीरिक श्रम के साथ – साथ यौन सेवा का सुख उच्च जातियों ने प्राप्त किया लेकिन दूसरी और जब दलित महिलाओं को अधिकार देने की बात आयी तो उन्हें जानवरों के समकक्ष रखा गया । स्वतन्त्रता के पश्चात् संविधान द्वारा दलित महिलाओं के अधिकारों को संवैधानिक दर्जा दिया तो गया लेकिन सामाजिक व्यवस्था की परम्परागत पद्धति ने इन व्यवस्थाओं को समाज विरोधी समझा। यही कारण है कि आज भी उच्च जातियाँ पुरानी व्यवस्था का अनुसरण करती चली आ रही है तथा सांस्कृतिक रूप से समाज में पीढ़ी दर पीढ़ी यह सोच व व्यवस्था विरासत के रूप में प्रवाहित हो रही है।

वर्तमान परिस्थिति में परिवर्तन लाने के लिए आवश्यकता इस बात की है कि व्यवहारिक धरातल पर ऐसे कार्यक्रम चलाये जाये जिससे दलित महिलाओं की सामाजिक व आर्थिक स्थिति में सुधार होने के साथ–साथ ये कार्यक्रम इन्हें इतना योग्य बना सके कि वे स्वयं को आत्मनिर्भर बना सके तथा अपने अन्दर आत्मविश्वास पैदा कर सकें। दलित महिलाओं को समाज की मुख्य धारा से पूरी तरह से जोड़ा जाये तथा दलित महिलाओं की मुक्ति के सन्दर्भ में बनाये गये समस्त सामाजिक एवं संवैधानिक कानूनों व प्रावधानों को व्यवहारिक धरातल पर लाने की नितान्त आवश्यकता है। व्यापक स्तर पर आज एक ऐसे वैचारिक आन्दोलन की आवश्यकता है जो समाज में व्याप्त पूर्वाग्रहों को दूर कर बिना किसी भेदभाव के समान रूप में रहने का मार्ग प्रशस्त कर सकें।

असिस्टेंट प्रोफेसर (समाज शास्त्र)
जे.एस. हिन्दू (पी.जी.) कॉलेज
अमरोहा (उ.प्र.) मोबा. 7007031490

संदर्भः–

1. राजकिशोर, "स्त्री के लिए जगह'', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000.

2. नैमिशराय, मोहनदास, "भारतीय दलित आन्दोलन'', बुक्स फॉर चेंज प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004.

3. आनन्द, मीना, "दलित विमेन फीयर एण्ड डिस्क्रिमिनेशन – ईशा बुक पब्लिकेशन, दिल्ली, 2005.

4. चतुर्वेदी जी, 'भारत में दलित शिक्षा', आरबीएसए प्रकाशन, जयपुर, 1999.

5. बसु, ए., "भारत में शिक्षा और जाति व्यवस्था की वृद्धि'', आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2010.

6. शर्मा, हेमलता, ""शिक्षा और दलित महिलायें'' बदलता सामाजिक परिदृश्य, कुरूक्षेत्र पत्रिका, सितम्बर, 2005.

वैश्वीकरण, महिला अधिकार व महिला सशक्तिकरण : एक अध्ययन

– अरूण कुमार

शोध सारांश – महिला समाज की धुरी है, जिस पर सम्पूर्ण समाज का अस्तित्व निर्भर करता है। वैश्वीकरण के इस दौर में नवीन संचार माध्यमों के उपयोग के फलस्वरूप महिलाओं ने अपनी उपस्थिति विभिन्न क्षेत्रों में दर्ज की है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने महिला सशक्तिकरण व उनके अधिकारों के संरक्षण में अहम् भूमिका निभाई है एवं इसने लिंग भेदभाव को भी नये आयाम प्रदान किये है, लेकिन वैश्वीकरण के इस युग में सशक्तिकरण के माध्यम से आये परिवर्तनों के बावजूद भी ऐसे अनेक क्षेत्र एवं परिदृश्य है, जहाँ महिलाओं को प्रत्येक स्तर पर संघर्ष करना पड़ रहा है। विकास की नई इबारत लिखने के बावजूद भी महिलाओं की समाज में स्थिति दयनीय बनी हुई है। समाज में उन्हें वह मुकम्मल स्थान प्राप्त नहीं हो सका, जिसकी अपेक्षा कभी संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर में व्यक्त की गयी थी। महिला अधिकारों के संरक्षण के लिए कानूनों की भरमार होने के बावजूद भी ये कानून पुरुष सत्तात्मक समाज में अपनी चमक खोते जा रहे हैं। प्रस्तुत शोध लेख वैश्वीकरण के इस युग में महिलाओं के मानवाधिकारों एवं उनके सशक्तिकरण की परिस्थितियों का विश्लेषण करता है ।

मुख्य शब्द – वैश्वीकरण, पित्त सत्तात्मक सत्ता, महिलायें, अधिकार, सशक्तिकरण।

प्रस्तावना–मानव अधिकार सम्पूर्ण विश्व का समसामयिक सर्वाधिक ज्वलंत मुद्दा है। यह एक व्यापक संकल्पना है जो एक सार्वभौमिक अवधारणा के रूप में व्यक्त की जाती है जिसमें सम्पूर्ण विश्व की मानव जाति समाहित है । मानव मात्र के रूप में जन्म लेते ही व्यक्ति मानवाधिकारों को प्राप्त कर लेता है। मानव की परिकल्पना में स्त्री–पुरूष दोनों शामिल हैं। दोनों ही सृष्टि निर्माणक है व एक–दूसरे के पूरक एवं सहयोगी है। ईश्वर द्वारा रचित इन अनुपम कृतियों के मध्य मानव द्वारा क्रियान्वित व्यवस्थायें भेदभाव उत्पन्न करती है तथा मानव–मानव के बीच योग्यता – अयोग्यता जैसे तत्वों का समावेशन करती हैं, तत्पश्चात व्यवस्था का सहारा लेकर मानव अधिकार एवं महिला अधिकार का हनन शुरू हो जाता है। प्लेटो, मिल, माओ एवं गाँधी जी जैसे युग पुरूषों ने महिलाओं की क्षमता का सम्मान करते हुये उनके अधिकारों की पैरवी की तथा महिलाओं के महत्व को स्वीकार करते हुये उन्हें मुख्य धारा से जोड़ने का भरसक प्रयास किया है।

18वीं सदी की औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप वैश्वीकरण का उदय हुआ और आज के समय को वैश्वीकरण का युग माना जाता है । वैश्वीकरण के इस दौर में शहरी संस्कृति, एकल परिवार व भौतिकवाद का जन्म हुआ । सूचना एवं संचार क्रान्ति ने महिलाओं को तकनीकी रूप से जागरूक एवं सक्षम किया, परिणामस्वरूप महिलायें घर की चार दीवारी से बाहर निकलकर अर्थोपार्जन करने लगी। इस स्थिति में उन्हें आर्थिक असमानता एवं अनेक विरोधात्मक परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। इसी कारण महिलाओं को निरन्तर समतामूलक समाज की स्थापना के लिए आवाज उठानी पड़ी। 1840 में लुक्रीशिया की अश्वेत महिलाओं ने समान अधिकार की पुरजोर माँग की। 8 मार्च 1857 को न्यूयार्क के सिलाई एवं वस्त्र उद्योग की महिलाओं ने समान वेतन एवं कार्य के निश्चित समय निर्धारण के लिए आन्दोलन किया। यह आन्दोलन इतना व्यापक व सशक्त था कि इसकी स्मृति में आज भी प्रतिवर्ष 8 मार्च को अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस मनाया जाता है ।

वैश्वीकरण के दौर में लैंगिक विषयों पर आधारित आन्दोलन का स्वरूप एक राष्ट्र राज्य की सीमा से बाहर निकलकर वैश्विक होता गया। विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय मंचों, साहित्यिक रचनाओं में महिलाओं के आर्थिक विकास में भागीदारी, महिला अधिकारों के उन्नयन, सामाजिक न्याय की स्थापना के मुद्दों को प्रमुखता दी गयी । 1904 में संयुक्त राज्य अमरीका में 'अन्तर्राष्ट्रीय महिला मताधिकार समिति' की स्थापना की गयी। लम्बे संघर्ष के पश्चात् न्यूजीलैण्ड ने सर्वप्रथम महिलाओं को मताधिकार प्रदान किया, तत्पश्चात् आस्ट्रेलिया सहित अन्य राष्ट्रों ने भी महिलाओं को मताधिकार दिया। भारत में संविधान निर्माताओं ने स्वतन्त्रता के साथ ही भारतीय महिलाओं को मताधिकार प्रदान किया ।

नओमी वुल्फ ने अपनी पुस्तक 'फादर विद फादर' में वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप महिलाओं के जीवन में आये परिवर्तनों को विस्तारपूर्वक लिखा है। उन्होंने कहा कि वैश्वीकरण के कारण महिलाओं के लिए अनेक अवसरों के द्वार खुले है तथा रोजगार सुलभ हो गया है। वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप रिश्तों की संवेदनशीलता में कमी आने के कारण सामाजिक ढाँचे व सोच में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ है। आज सिंगल वुमैन वर्ल्ड की धारणा मजबूत हुयी है, जिस कारण अब अकेली महिला असहाय नहीं समझी जाती है । शिक्षा के अधिकार, कानूनों की उपलब्धता व रोजगार के बढ़ते अवसरों के कारण महिलायें आत्मनिर्भर हुयी है । उच्च शिक्षा, बैंकिंग, बीमा, रेलवे, आई.टी., पुलिस, हेल्थ सेन्टर, सेना व अन्तर्राष्ट्रीय कम्पनियों में महिलाओं ने अपनी क्षमता का परिचय दिया है । माओ का यह वाक्य कि 'आधा आसमान महिलाओं ने सिर पर उठा रखा है।' आज सत्य साबित होता दिख रहा है। वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप महिलायें आज प्लेटो की कल्पना से एक कदम आगे निकल गयी है। अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'रिपब्लिक' में प्लेटो ने लिखा कि 'स्त्रियाँ योग्य होती है किन्तु वे अपनी योग्यता का उपयोग घर की चारदीवारी में ही करती हैं, उन्हें अपनी क्षमता का उपयोग राजकीय कार्यों में करना चाहिए।' आज महिलायें घरेलू व सार्वजनिक दोनों क्षेत्रों में संतुलित ढंग से अपने कार्य को अंजाम देकर परिवार, समाज व राष्ट्र के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दे रही है।

द्वितीय विश्व युद्ध की विभीषिका के परिणामस्वरूप नष्ट हो चुकी मानवीयता ने मानव अधिकारों की अवधारणा में आमूलचूल परिवर्तन किये। 24 अक्टूबर 1945 को गठित संयुक्त राष्ट्र संघ ने अपने चार्टर में स्त्री–पुरूष समानता के सिद्धान्त को स्थान दिया। वर्ष 1966 में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ''महिलाओं की प्रस्थिति पर आयोग" स्थापित किया गया जो "भेदभाव की अग्राह्णता के सिद्धान्त'' को स्पष्ट करता है। 1967 में महिलाओं के विरुद्ध भेदभाव की समाप्ति के लिए एक अधिनियम बनाया गया जो 18 दिसम्बर 1979 को अंगीकृत किया गया । संयुक्त राष्ट्र संघ के महासचिव ने वर्ष 1975 को अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष घोषित किया। 1981 में महिलाओं के विकास के लिए आर्थिक एवं सामाजिक परिषद बनायी गयी ।

महिला अधिकारों के संरक्षण एवं संवृद्धि तथा उनके सशक्तिकरण के लिए वर्ष 1975, 1980, 1983 व 1995 में क्रमशरू मैक्सिको, कोपेनहेगन, नैरोबी व बीजिंग में महिला सम्मेलन आयोजित किये गये, तत्पश्चात विश्व के लगभग सभी देशों ने महिला सशक्तिकरण व मानवाधिकारों के संरक्षण से सम्बन्धित नियमों एवं अधिनियमों का निर्माण किया। ब्रिटेन में मैट्रिमोनियल होम एक्ट 1976, डोमेस्टिक वायलेंस एक्ट, 1976 तथा सिविल राईट एक्ट 1964 के द्वारा लिंगभेद का निषेध किया गया । अमरीका में द वायलेंस अगेंस्ट वीमैन एक्ट 1984, भारत में दहेज प्रतिषेध अधिनियम 1956, अनैतिक व्यापार निवारण अधिनियम 1986, स्त्री अशिष्ट निरूपण प्रतिषेध अधिनियम 1986

इत्यादि एवं आस्ट्रेलिया, चीन, डेनमार्क, कनाड़ा एवं जापान में भी विवाहित स्त्री, बलात्कार निषेध अधिनियम निर्मित किये गये है।

मानवाधिकारों की विविध व्यवस्थाओं में महिलाओं के लिए अलग–अलग उपबन्ध देखकर अकस्मात एक प्रश्न उठता है कि वैश्वीकरण के इस युग में क्या महिलायें भी मानव है ? यदि हाँ तो फिर यह अलगाव भरी व्यवस्थायें क्यों ? दूसरा तथ्य यह है कि अनेकानेक कानूनों की उपस्थिति होने के पश्चात् आज भी महिलायें उत्पीड़ित, अपमानित व शोषित क्यों हो रही है ? कहीं ऐसा तो नहीं कि ''ज्यों–ज्यों उपचार हो रहा है, बीमारी बढ़ती ही चली जा रही है।'' संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या कोश की वर्तमान रिपोर्ट के अनुसार भारत में 15–49 वर्ष की 70 प्रतिशत महिलायें किसी न किसी रूप में हिंसा की शिकार होती है। विकसित राष्ट्रों को छोड़ दे तो लगभग अन्य सभी राष्ट्रों में शैक्षणिक स्तर पर महिलायें अभी भी पिछड़ी हुयी है । संयुक्त राष्ट्र संघ की एक रिपोर्ट के अनुसार विश्व की 2/3 प्रतिशत महिलायें विभिन्न कार्यस्थलों में कार्यरत है, लेकिन उनके पास विश्व की सम्पत्ति का एक प्रतिशत मात्र है । विडम्बना देखिए कि उनको कमाई का अधिकार है लेकिन अपनी कमाई को खुद पर खर्च करने या बचत करने का अधिकार नहीं के बराबर है ।

वर्तमान समय में भी महिलायें वैतनिक असमानता, कार्यस्थल पर यौन–शोषण व त्रि–बोझ (घर, नौकरी व बच्चों) के भार के नीचे दबी हुयी हैं। जॉन पेटमैन ने अपने अध्ययन में पाया कि ''काम की तलाश में राज्यों की सीमायें पार करती कामगार महिलाओं को विविध प्रकार के अनुभव होते हैं, जिनमें मुक्ति कारक एहसास से लेकर प्रत्येक स्तर का शोषण व अत्यन्त खतरनाक परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है।"

वैश्वीकरण ने जहाँ एक ओर महिलाओं को उपभोक्ता बनाया है तो वहीं दूसरी ओर उन्हें उत्पादक भी बनाया है। इस सन्दर्भ में 'मारिया मीस' ने अपने अध्ययन में पाया कि वैश्वीकरण ने महिला एकता में बाधा उत्पन्न की क्योंकि वैश्वीकरण की प्रक्रिया उपभोक्ता एवं उत्पादक के मध्य तनाव उत्पन्न करता है।

इसके साथ ही वैश्वीकरण की प्रक्रिया में समाज पूँजी के दास बन गये जो सम्पत्ति संग्रह, सत्तावाद, भोगवाद की आत्मीयता, अनैतिकता, विलासिता तथा संवेदनहीनता के आदर्शों को ज्यादा महत्व देते हैं । इस दौर में महिलायें ही लोगों के समक्ष एक कमजोर प्राणी के रूप में उपस्थित होती है, जिस कारण उनके खिलाफ निरन्तर हिंसात्मक कार्यों को बढ़ावा दिया जाता है।

निष्कर्ष – वैश्वीकरण ने हमें एक ऐसी पृष्ठभूमि दी है जिसमें हम विभिन्न लैंगिक पूर्वाग्रह से बाहर निकलकर एक गरिमापूर्ण जीवन जीने की परिस्थिति उत्पन्न करे और कुछ देशों में ऐसा हुआ भी लेकिन वैश्वीकरण के कारण महिलाओं के समक्ष अनेक नई समस्यायें निकलकर सामने आयी है। अभी भी महिला अधिकारों के संरक्षण एवं संवर्द्धन तथा उनके सशक्तिकरण हेतु बहुत कुछ किया जाना बाकी है, क्योंकि आज भी समुचित कानूनों, नियमों के होते हुये भी परिवार में पति द्वारा, समाज में उच्च वर्ग द्वारा और कार्यस्थल पर नियोक्ता द्वारा महिलाओं के साथ अमानवीय व्यवहार किया जाता है। वास्तव में 21वीं सदी की यह महती आवश्यकता है कि महिलाओं को मानव मानकर उसके अस्तित्व को स्वीकार किया जाना चाहिए जिससे वे अपने अधिकारों के प्रयोग की छाँव में अपना श्रेष्ठतम प्रदर्शन मानव जाति के कल्याणार्थ कर सकें ।

असिस्टेंट प्रोफेसर (राजनीति विज्ञान)
राजकीय महिला महाविद्यालय, झाँसी (उ.प्र.)
मोबा. 9450503226

संदर्भः–

1. आर्य, साधना, मेनन, निवेदिता लोकनीता, जिनी (2015)
2. पाण्डेय, तेजस्कर (2012)
3. पाण्डेय, प्रतिभा (2017)
4. विजयलक्ष्मी (2007) : "नारीवादी राजनीति : संघर्ष एवं मुद्दे"य हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।
   "भारत में सामाजिक समस्यायें ष्य टाटा मैक्ग्रा हिल एजूकेशन प्रा.लि., नई दिल्ली।
   भारतीय स्त्री दशा एवं दिशाष्य योजना पत्रिका फरवरी ।
   "महिला सशक्तिकरण की कुछ कोशिशें ष्य कुरूक्षेत्र''
5. सिंह, बहादुर करन (2006) पत्रिका, मार्च।
   "महिला और समाजश्य कुरूक्षेत्र पत्रिका, मार्च।
6. पाण्डेय, रविप्रकाश (2012)
7. चितकारा, एम.जी. (2009)
8. श्रीवास्तव, राजीव (2012) अग्रवाल, उमेशचन्द्र
9. (2016) 'वैश्वीकरण एवं महिलायेंष्य विजय प्रकाशन मन्दिर प्रा.लि., वाराणसी ।
   "महिलायें एवं सामाजिक परिवर्तन"य ए.पी.एच. पब्लिशर्स, नई दिल्ली ।
   'वैश्वीकरण एवं समाजष्य वैभव लक्ष्मी प्रकाशन, वाराणसी।
   "नई सदी में महिला सशक्तिकरण के अभिनव प्रयास"य प्रतियोगिता दर्पण, जनवरी ।
10. www-vivacepanorma-com/beijing&women
    www-nhrc-nic-in
    www-mahilaayog-up-nic-in

दलित कहानी और संघर्ष

– डॉ. शैलजा हेच.जी.

दलित कहानियां भारतीय समाज की मानसिकता को झकझोरती हुई ऐसा भयानक चित्र हमारे सामने लाती है जिसमें समाज व्यवस्था की नींव दलितों के श्रम और खून से विकसित हुई है। दलित कहानियाँ सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक सन्दर्भों के अन्तर्गत अन्याय, विषमता, अत्याचार, दमन, यातना, शोषण, अमानवीयता के अछूते पहलू को खोलती हुई दलित समाज के संघर्ष और विद्रोह को उभारती है। इन कहानियों में दलितों का जीवन जाति–वर्ण व्यवस्था के शिकंजे से दफना हुआ, पेट की भूख भरने की लाचार विवशता, सामंती और पूंजीवादी अत्याचारों को पीठ पर झेलना, सामाजिक आर्थिक विषमता के अन्याय से पिसता चित्र प्रस्तुत है। दलित कहानियों का मूल स्वर प्रायः सामाजिक परिवर्तन, विद्रोह, निषेध और संघर्ष दिखलाई पड़ता है। वस्तु प्रतिपादन में कहानिकारों की भावनात्मक दृष्टि यहाँ कम मिलती है। व्यवस्था की विकरालता के कारण व्यक्ति की चारित्रिक पवित्रता का कोई नैतिक अर्थ नहीं दिखलाई पड़ता। वैश्यावृत्ति, हत्या, लूट–खसोट इत्यादि सामान्य जीवन के लक्षण लगते हैं। इस नारकीय जीवन में कहीं मानवीय संवेदना की कोमलता दिखलाई नहीं पड़ती। कहने का तात्पर्य यह है कि हिन्दी की इन दलित कहानियों में दलित जीवन की विविध समस्या को भोगे हुए यथार्थोन्मुख धरातल पर प्रकाश डाला गया है।

हिन्दी कहानी में उपेक्षित दलित वर्गों के जीवन का चित्रण प्रेमचंद की कहानियों से विशेषकर सदगति, ठाकुर का कुआं, दूध का दाम, पूस की रात, कफन आदि यथार्थवादी कहानियों से शुरू हुआ है। 'सदगति' कहानी में दुःखी चमार की दर्दपूर्ण व्यथा है, तो 'ठाकुर का कुआं' में स्वच्छ पानी के लिए तरसते अछूत जोखू की करूण गाथा है। 'दूध का दाम' में मूंगी भंगिन और उसके पुत्र मंगल की अमानवीय दुर्दशा का यथार्थ चित्रण है। 'कफन' कहानी में भूख पिता–पुत्र को अमानवीय बना देता है। वस्तुतः इन कहानियों का कथ्य भूख की पीड़ा से दलित मानव की विचार शून्यता है, संवेदनहीनता की कुरूप छवि है, कड़वे यथार्थ को व्यंग्य के माध्यम से निरूपित करना है, शोषण पर आधारित सामाजिक व्यवस्था के बीच मानवीय नैतिक मूल्यों के टूटन और उनके प्रति विद्रोह की अभिव्यक्ति है। प्रेमचंद के बाद हिन्दी कहानी में दलित चेतना के चित्रण की प्रवृत्ति शिथिल दिखलाई पड़ती है। प्रेमचन्दोत्तर कहानी विशेषकर नई कहानी मूलतः मध्यवर्गीय नगरीय जीवन के यथार्थ से जुड़ी रही। कहानी का संसार मानव–मानव के बनते बिगडते सम्बन्धों और उनके बदलते मूल्यों, त्रास, आंतर और ऊब की पीडा, परम्परा

और आधुनिकता की टकराहट, सामाजिक–सांस्कृतिक परिवेश–बोध, राजनीतिक गतिविधियों से उत्पन्न सामाजिक विकृतियों से भरा पड़ा है।

दलित जीवन की कहानियों में जैसा कि नाम से स्पष्ट है समाज के उन लोगों की समस्या को उनकी दयनीय स्थितियों को चित्रित किया गया है। इन कहानियों में चित्रित पात्र अपने परिवेशगत बन्धनों से मुक्ति पाने के लिए संघर्षरत हैं। दलित जीवन की कहानियों में आधुनिक सामाजिक व्यवस्था में श्रमिकों के प्रति व्याप्त दृष्टि का पर्याप्त आंकलन हुआ। सामाजिक यथार्थ के विभिन्न सन्दर्भों में स्थानीय राजनीति की रूझानों, परम्परागत धार्मिक रूढियों, सामंती पूंजीवादी और सरकारी तन्त्रों ने सामाजिक विषमता और आर्थिक शोषण के विधि आयामों से दलितों के जीवन को उत्पीड़ित किया है। उनके जीवन में श्रम का अवमूल्यन उन्हें दासता के बन्धनों में जकड़ता है। इसलिए उन्हें असंतोष, आक्रोश, विद्रोही, निषेधात्मक, जुझारू मुद्राएँ अपनानी पड़ी हैं जिससे आधुनिक सामाजिक व्यवस्था में श्रम की महत्ता प्रतिबिम्ब हो सके।

पूंजीवादी और सरकारी तंत्र से निर्मित समाज व्यवस्था के अन्तर्गत आदिवासी दलित समाज की कसमकसाती जिन्दगी का यथार्थ 'आदमी' कहानी में दिखलाई पड़ती है। कहानी का प्रतिनायक कारिया दिनभर जंगल में हाड़–तोड़ परिश्रम करके लकड़ी काटता है। लेकिन इस श्रम से वह अपना और अपनी पत्नी दोनों के लिए भर पेट भोजन उपलब्ध नहीं करा पाता। ठेकेदार, सरकारी तंत्र के उच्चाधिकारी, जंगल बाबू, सिपाही आदि सभी आपस में मिलकर आदिवासियों का श्रम शोषण करते हैं और उन्हें अत्याचारों का शिकार बनाते हैं।

दलित समाज परम्परा से उपेक्षित रहा है। पशु से भी लांछित जिन्दगी जीने वाले इन मनुष्यों में अपने अस्तित्व के प्रति चेतना का विकसित होना सम्भव था। स्वतंत्रा के बाद आर्थिक,समसामयिक,राजनीतिक और सामाजिक विचारधारा एवं दर्शन और चेतना ने उनमें अस्मिता की भावना जगाई।

'हरिजन सेवक' कहानी में हरिजन सेवक मास्टर की कृपा से दलितों में अपने अधिकारों के लिए चेतना जग जाती है। सवर्ण भूस्वामियों से उचित मजदूरी की मांग करने पर इन दलितों के ऊपर अनेक अत्याचार होते हैं। हरिजन लड़ाई स्वयं लड़ने के लिए जेल चले जाते हैं। 'आदमी' कहानी में आदिवासी कारिया में चेतना जगने पर वह श्रम चुराने वाले शोषक के अन्याय के विरूद्ध कमर कस कर लड़ता रहा। आदिवासी युवा मानिया मुरमू शहर में पढ–लिखकर बस्ती में लौट आता है। वह अपने आदिवासी भाइयों को शोषण करनेवालों के विरूद्ध लड़ाई लड़ने की चेतना जगाता है। कारिया अपने अन्याय का बदला चुकाने के लिए जंगल बाबू का अंत कर देता है।

'एक और सीता' कहानी में सीता अपने पति की मृत्यु के बाद अपनी रक्षा के लिए ठाकुर को चुनौती देती है।अपने अस्तित्व के प्रति सजग होने पर ठाकुर को अपने पास तक नहीं फटकने देती। 'सड़क' कहानी में सरकारी कानून के अनुसार दलित चमार भूमि प्राप्त करने के लिए तहसील में अर्जियाँ लगाते हैं। सवर्ण भूस्वामी अपनी प्रतिक्रिया में अनेक स्वार्थी चालों से दलितों पर अत्याचार करना शुरू कर देते हैं। दलित इन शोषकों की राजनैतिक चालों से अवगत होते ही सचेत हो जाते हैं। दलितों में अपने अधिकारों के प्रति आत्म सजगता आ जाने पर शेष सवर्ण भूस्वामी सहम जाते हैं।

ग्रामीण व्यवस्था में राजनैतिक दलों की स्वार्थी चालबाजों में दलितों का जीवन दुखःद बनता गया। इस तथ्य को कई कहानियों में देखा जा सकता है। 'हरिजन सेवक' कहानी में ग्रामीण सामंतवादी ढांचे के अन्तर्गत हरिजनों के ऊपर होनेवाले अत्याचारों की यथार्थ पीड़ा को उभारा गया है। युगों से दुसाध हरिजन टोली सवर्ण भूस्वामियों की सेवकाई करके जीविका यापन करती रहती है। हरिजन सेवक मास्टर साहब इन दुसाध टोली के लोगों को शिक्षा और ज्ञान का प्रकाश देकर आत्म स्वालम्बन का पाठ पढ़ाते हैं। शिक्षा के कारण ही

हरिजनों की पशुवत जिन्दगी में मनुष्यों की आशा–आकांक्षा की उमंग पैदा होती है।

समकालीन कहानीकारों ने दलित एवं शोषित वर्ग के अधिकारों हेतु संघर्ष की चेतना जागृत की है। श्रम और संघर्ष दलित चेतना का अधिकार है। दलित कहानियों के संसार में कहीं पूंजीवादी और सरकारी तंत्र की शोषण यातना से पिसते आदिवासी हैं,कहीं ग्रामीण व्यवस्था के सामंती सर्पों के दंश से मरते श्रमिक हैं,कहीं अपने अधिकारों के प्रति सचेत होनेवाले 'नक्सलवादी' हैं, कहीं हरिजनों और बंधुआ मजदूरों की दारूण व्यथा का चित्रण भी है।

'सर्पदंश' कहानी में गोकुल नरक तुल्य जिन्दगी से ऊपर उठने के लिए उसमें मानवीय अस्तित्व की समझ आ जाती है, वह उन शोषकों के चेहरों को भी पहचानने लगा जो उनके श्रम को खून की तरह चूसते थे। गोकुल में अपने अधिकारों और अस्तित्व की पहचान आ जाने पर गांव का प्रधान उसे खत्म करवा देता है। गोकुल का पुत्र अपने मानवीय अस्तित्व को जीवित रखने के लिए दलित समूह को एकत्रित करने दौड़ता है। 'कामरेड का सपना' कहानी में कामरेड कल्ला अपनी बंधुआ मजदूरी की बेडियां तोड़कर पार्टी में कामरेड़ बन जाते हैं। कामरेड कल्ला की तरह अन्य बंधुआ मजदूर भी अपनी बेडियां तोड़ देते हैं। कामरेड कल्ला दलित मजदूरों और गरीब हरिजनों के अधिकारों के लिए सवर्ण भूस्वामियों से लड़ते हुए मर गए। दलित वर्ग में अपने अस्तित्व की विध्यमानता के लिए जन विरोधी शोषकों से लड़ने की आक्रोशी ज्वाला दहक उठती है। 'पन्ना धाय का दूसरा बेटा' कहानी में पन्ना धाय की नयी पीढ़ी के डिप्टी में अपने अस्तित्व के प्रति चेतना आ गई। सामंती रजवाड़ों के लिए दलितों ने अनेक बलिदान किये। राजा के बने हुए इतिहास में इन दलितों का दलन हुआ। पन्ना धाय का दूसरा बेटा डिप्टी जेल की कैद में मौत की छटपटाहट से जूझता हुआ इन जमींदारों के शोषण, अन्याय और अत्याचारों से अवगत होकर उनका विरोध करता है।

गरीबी के कारण भूखे पेट रहनेवाले दलितों की दारूण स्थिति और भी अधिक अमानवीय हो गई है। जब वे तथाकथित उच्च वर्ग के सामाजिक उत्सव में दिए न्यौतों में झूठे पत्तलों को चाटने को ही अपना सैभाग्य मानने लगे है। जूठे पत्तल खाने वालों कुत्तों, सुअरों और मानवों में कहीं कोई विशेष अन्तर दिखलाई नहीं पड़ता। ऐसी ही अमानवीय स्थिति का चित्रण मिलता है, रमाकान्त की कहानी 'बयान' में। 'अयोध्या कांड' कहानी में विषम व्यवस्था के परिवेश की विसंगतियों, अन्याय और अमानवीय पहलू की तीखी वेदना उभरी है। आर्थिक–सामाजिक, असामनता के दंश का शिकार दलित भव्वा अपने लड़के को ईसाई बना देता है। रूढ़िवादी सवर्ण वर्ग इसका विरोध करते हैं। पीड़ित भव्वा अपनी कड़वाहट को बाहर उगलते हुए सवर्णों की चिंता न करते हुए अपने बेटे को इस नरकीय जीवन से ऊपर उठाने के लिए अपने धर्म को ही बदलना बेहतर समझता है।

'दलित जीवन की कहानियाँ' आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य में हुए नए प्रयोग की बुनावट को रेखांकित करती है। समकालीन कहानी–लेखकों का मूल उद्देश्य रहा है कि समाज के शोषित एवं दलित मनुष्य के जीवन की आशा–आकांक्षा को अपनी कहानियों में व्यक्त करना तथा उनके मानवीय अधिकारों के लिए प्रतिबद्ध रहना। इन कहानियों की अछूती संवेदना को व्यापक यथार्थ धरातल पर प्रस्तुत किया गया है। समकालीन कहानीकारों ने मूलतः दलितों की वेदना, उनके निरंतर संघर्ष करते रहने की अनिवार्यता, सुविधा – भोगी लोगों के प्रति उनकी विरोध मुद्रा तथा प्रतिकूल नारकीय स्थितियों में भी जीने की विवशता का चित्रण किया है। इन कहानियों में चित्रित पात्र अपने परिवेशगत बन्धनों से मुक्ति पाने के लिए संघर्षरत हैं।

आलोच्य कहानियों में हजारों वर्षों से मूक रहने वाले शोषित निम्नवर्गीय जन–समुदाय में आधुनिक कालीन मानवीय अधिकार जैसे समानता ,समता, स्वतंत्रता प्राप्त करने में उनकी शक्ति उभरने लगी है ।

हालाकि नारकीय परिस्थितियों में जीवन जीते रहने वाले इन कहानियों के विलक्षण जीवंत पात्रों में शोषण तथा दारूण यातना के शिकार होने पर भी जीवन के प्रति बेदर्द, बेधड़क, अदम्य संघर्षात्मक जिजीविषा हमेशा विध्यमान रहती है। अतः शोषित एवं दलित मनुष्यों के जीवन की मानवीय आशा आकांक्षाओं को उभारने के साथ–साथ इन कहानियों में समाज के शोषक अमानवीय चेहरों को बेनकाब कर दिया है।

सह–प्राध्यापक, हिन्दी विभागाध्यक्षा
संत आग्नेस कालेज (स्वायत्त) मंगलूरु–575002, कर्नाटक
मोबा. 9449990840

दिव्यांगजन हेतु समावेशी शिक्षा में डिजिटल लर्निंग : कोविड 19 की परिस्थितियों के संदर्भ में

– कृष्ण कुमार पाठक

"ऐसा समाज जिसमें बच्चों और युवाओं की शिक्षा की दृष्टि नहीं है और वह इसके लिए तैयार भी नहीं है तो वह सत्य हो जाने को अभिशप्त है" – महात्मा गाँधी

दिव्यांगता एक ऐसा शब्द है जो सीधे–सीधे सुनने में एक अलग ही अवधारण को जन्म देता है किन्तु गहन अध्ययन व मंथन करने पर निकलकर आता है कि यह एक प्रकार का गुण है जो किसी को भी विशिष्ट बना देता है मूल शब्द के रूप में दिव्यांग शब्द प्रयोग किया जाता है। दिव्यांग शब्द का प्रयोग वर्तमान में विकलांगजनों के लिए किया जाता है और दिव्यांगता को इनके विशेषण के रूप में प्रयोग किया जाता है।

मुख्य शब्द – दिव्यांगजन, समावेशी शिक्षा, डिजिटल लर्निंग।

दिव्यांग शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम हमारे देश भारत के माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी के द्वारा रेडियो पर 26 दिसम्बर 2016 को मन की बात कार्यक्रम के माध्यम से विकलांगजन को दिव्यांगजन कह कर संबोधित किया और इस दिनांक से ही सभी स्थान पर विकलांग की जगह दिव्यांग और विकलांगता की जगह दिव्यांगता शब्द के प्रयोग पर जोर देने की बात कही।

अब हमारे जहन में आता है कि दिव्यांगता क्या है? और यह कौन लोग होते हैं ? सबसे पहले दिव्यांगता को चिकित्सा संबंधी समस्या माना और समझा जाता था और विचारधारा ऐसी बनी थी की डाक्टर लोग ही इसको जान व समझ सकते थे। लोगों के मन में यह धारणा थी कि यह लोगों के पूर्व जन्म का पाप है या यह किसी प्रकार की छाया मानते थे यहाँ तक कि हमको पाप की सजा मिली है। इस प्रकार की धारणा लोगों के मन में बना था। समाज में लोग इनको सामने नहीं लाते थे इनको घर के अन्दर ही बंद करके रखते थे इनके लिए समाज में विकलांग असमर्थ, अक्षम, विशेष आवश्यकता वाले बच्चे, विशेष प्रकार के बच्चे, भिन्न क्षमता वाले बच्चे, मंद बुद्धि वाले बच्चे आदि शब्द प्रचलित थे। इन शब्दों का प्रयोग कर पुकारे जाने पर इनमे भेदभाव, पूर्वाग्रह और दुरुभाव की भावना जन्म लेती थी। दिव्यांगता को समझने के लिए इसे हम क्षति, अक्षमता व दिव्यांगता में बांट कर समझ सकते है।

डब्लू.एच.ओ. के अनुसार–

क्षति – क्षति, शारीरिक संरचना, मनोवैज्ञानिक अथवा शारीरिक क्रियाओं की कमी या असामान्यता होती है।

कोई भी असामान्यता जो शारीरिक या मानसिक स्तर की होती है क्षति कहलाती है। यह अंग स्तर पर होती है व्यक्ति के शारीरिक स्थिति में किसी भी प्रकार का दुराव क्षति दर्शाता है। इसको और भी स्पष्ट रूप से जानने का प्रयास किया जाय तो ऐसा पाया जाता है कि व्यक्ति के किसी भी अंग, प्रत्यंग में त्रुटि या मानसिक प्रक्रियाओं की कुशलता में कमी आदि लक्षण त्रुटि को स्पष्ट करते है।

अक्षमता – अक्षमता को क्षमता में प्रतिबन्ध या कमी (क्षति के परिणामस्वरूप) के रूप में परिभाषित किया जाता है। जो किसी व्यक्ति द्वारा किसी कार्य के संपादन के तरीके या सामान्य कही जाने वाली परिधि में

वैयक्तिक स्तर पर कमी के रूप में होती है।

इंटरनेशनल क्लासिफिकेशन ऑफ इम्पेयरमेंट, डिसेबिलिटी एंड हैंडीकैप्ड के अनुसार – जब किसी कार्य को करने के तरीके में सामान्य व्यक्ति जैसी क्रिया नहीं दिखायी अर्थात कार्य करने में बाधा या क्षति पंहुचाती है।

डब्लू. एच. ओ. के अनुसार – अक्षमता मनोवैज्ञानिक, संवेगात्मक या शरीर के किसी अंग की क्षति होती है।

दिव्यांगता – दिव्यांगता व्यक्ति की उस दशा को कह सकते है जो क्षति या अक्षमता के कारणों से उत्पन्न होती है। इसमें व्यक्ति शारीरिक व मानसिक क्रियाओं संबंधी भूमिकाओं को सामान्य व्यक्ति की तुलना में कम कर पाता है इस प्रकार दिव्यांगता व्यक्ति के भौतिक, शारीरिक, मानसिक स्थितियों और उससे सम्बंधित क्रियाकलापों से उत्पन्न एक प्रकार की सामाजिक स्वरूप की स्थिति है।

इंटरनेशनल क्लासिफिकेशन ऑफ इम्पेयरमेंट, डिसेबिलिटी एंड हैंडीकैप्ड के अनुसार – व्यक्ति के उम्र, लिंग, सामाजिक, सांस्कृतिक कारकों में क्षति एवं अक्षमता के कारण जो नुकसान या पिछड़ापन हो जाता है उसे दिव्यांगता कहते है।

वर्तमान में दिव्यांगजन की स्थिति को समझने के लिए दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम 2016 (Right of Person with Disability Act 2016) (RPWD 2016) केंद्र सरकार द्वारा लाया गया है इसके माध्यम से दिव्यांगजजनों तथा इनके शिक्षा को देखने का प्रयास करते है।

दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम 2016 (Right of Person with Disability Act 2016) (RPWD 2016)– 1995 में आया हुआ जन निःशक्त अधिनियम में जिन विषयों पर प्रकाश डालना रह गया था तथा जो जननिःशक्त अधिनियम में प्रकाश में नहीं आई उनको भी दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम 2016 (Right of Person with Disability Act 2016) (RPWD 2016) के अंतर्गत जोड़ा गया इस प्रकार से सात की जगह 21 प्रकार की दिव्यांगता का उल्लेख किया गया है इसके बावजूद भी यह लिखा गया है कि यदि कोई अन्य दिव्यांगता प्रकाश में आती है तो एक संशोधन कर इसके अंतर्गत जोड़ा जा सकता है। इसमें दिव्यांगजनों की शिक्षा, रोजगार, सुरक्षा के साथ–साथ रोजगार में 3% की जगह 4% सीट दिव्यांगों के लिए आरक्षित कर दी गयी है इन 4% सीट (1% सीट में पूर्ण दृष्टि बाधित या आंशिक दृष्टि बाधित, 1% बधिर या श्रवण शक्ति में ह्रास, 1% चलन दिव्यांगता जिसके अंतर्गत प्रमस्तिक घात, रोग मुक्त कुष्ठ व्यक्ति, बौनापन, तेजाब आक्रमण से पीड़ित और पेशीय दुश्पोषण भी है, 1% स्वपरायणता, बौध्दिक दिव्यांगता, विशिष्ट अधिगम दिव्यांगता और मानसिक रुग्णता) तो वही उच्च शिक्षा संस्थानों में प्रवेश के लिए दिव्यांगजनों हेतु कुल सीट का 5% सीट आरक्षित की गयी है। इसके अंतर्गत 21 प्रकार की दिव्यांगता सम्मिलित की गयी है जो इस प्रकार है :–

1–अंधापन

2–कम–दृष्टि

3–कुष्ठ रोग से पीड़ित व्यक्ति

4–सुनवाई हानि (बहरा और सुनने में कठिन)

5–लोकोमोटर विकलांगता

6–बौनापन

7– बौद्धिक विकलांगता

8–मानसिक बीमारी

9–ऑटिज्म स्पेक्ट्रम विकार

10–सेरेब्रल पाल्सी

11–मस्कुलर डिस्ट्रॉफी

12–जीर्ण तंत्रिका संबंधी स्थितियां

13–विशिष्ट सीखने की अक्षमता

14–मल्टीपल स्केलेरोसिस

15– वाक् और भाषा विकलांगता

16–थैलेसीमिया

17–हीमोफिलिया

18–सिकल सेल रोग

19—बहुदिव्यांगता

20—एसिड अटैक पीड़ित

21—पार्किंसन रोग

कोई अन्य प्रवर्ग (दिव्यांगता) जो केन्द्रीय सरकार द्वारा अधिसूचित किए जाए।

समावेशी शिक्षा — शिक्षा की ऐसी व्यवस्था है जिसमें न्याय संगत तरीके से सामान्य बच्चों के साथ साथ दिव्यांग बच्चों को शिक्षा प्रदान की जाती है।

समावेशी शिक्षा प्राथमिक तौर पर स्कूली संस्कृति, नीतियों और उनके साथ होने वाले व्यवहार का नाम है इस शिक्षा में सामान्य बच्चों के साथ दिव्यांगजनों को पढ़ाने लिखाने की विशेष तकनीकि, विधि व विशेष प्रशिक्षित शिक्षक के सहयोग से शिक्षण एवं प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है। प्रारंभिक शिक्षा बच्चों को घर से ही प्रदान की जाती है। माता प्रथम गुरु होती है वह अपने बच्चे के विकास के लिए हर संभव कार्य करती है जब पता लगता है कि हमारा बच्चा दिव्यांग है तो उसके बारे में जानने का प्रयास करती है। दिव्यांगजनों को लेकर अभी हमारे समाज में जागरूकता की कमी है फिर एक माता अपने बच्चे के विकास के लिए प्रयासरत रहती है सरकार की अलग—अलग योजना को जन—जन तक पहुँचाने के कारण लोगों में जागरूकता बढ़ रही है। "दिशा" योजना के अंतर्गत शीघ्र हस्तक्षेप व स्कूल की तैयारी पर विशेष ध्यान दिया जाता है। तो वहीं "विकास" योजना के अंतर्गत दैनिक देखभाल योजना बनायीं गयी है। ''समर्थ" योजना के अंतर्गत देखभाल राहत की ओर ध्यान आकर्षित किया गया है। "घरौंदा" योजना के अंतर्गत वयस्कों के लिए ग्रुप होम अवधारणा विकसित किया गया है। निरामय स्वास्थ्य बीमा योजना की बात इनके लिए की गयी है। "सहयोगी" योजना के अंतर्गत देखभाल प्रशिक्षण योजना के लिए प्रशिक्षकों को तैयार किया जाता है। साथ ही "बढ़ते कदम" योजना द्वारा जागरूकता एवं समुदाय संवाद के माध्यम से दिव्यांग बच्चों के सम्बन्ध में लोगों तक जानकारी पहुचायी जायेगी।

समावेशी शिक्षा के लिए पहल — शिक्षा का विषय केंद्र एवं राज्य सरकार की संयुक्त जिम्मेदारी है। केंद्र जहाँ नीतियाँ बनाती है और वित्त के एक बडे हिस्से की सुविधा भी उपलब्ध कराती है तो वहां केंद्र शासित प्रदेश और राज्य अपनी नीतियों को आयोजित करते है और इसे लागू करते है।

भारत ने 30 मार्च 2007 में UNCRPD (यूनाइटेड नेशन कन्वेंशन ऑन द राइट्स आफ पर्सन विथ डिसेबिलिटी) पर हस्ताक्षर किया था। भारत ने एक अक्टूबर 2007 को UNCRPD (यूनाइटेड नेशन कन्वेंशन ऑन द राइट्स आफ पर्सन विथ डिसेबिलिटी) को समर्थन दिया और दिव्यांग बच्चों सहित सभी को समान अवसर देने के वचन को पुनः दुहराया। UNCRPD के आर्टिकल 24 के अनुसार सरकार ने दिव्यांगजनों के अधिकार प्रदान करने के लिए संशोधन भी किया तथा सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय के अंतर्गत दिव्यांगजनों से सम्बंधित मुद्दों का एक नया विभाग भी बनाया गया इस विभाग के द्वारा वर्तमान योजनाओं को और प्रभावशाली तरीके से क्रियान्वयन करने का लक्ष्य रखा गया केंद्र सरकार के शिक्षा मंत्रालय की सबसे महत्वाकांक्षी योजना सर्वशिक्षा अभियान के अंतर्गत 6 साल से 14 साल आयु वर्ग के बच्चों की प्राथमिक शिक्षा की योजना बनायीं गयी है जबकि दिव्यांगजनों के लिए 6 साल से 18 साल आयु वर्ग तक इसमें सम्मिलित किया है। इस योजना के अंतर्गत दिव्यांगजनों को बाधामुक्त वातावरण में शिक्षा प्रदान करने का लक्ष्य रखा गया इसमें सामान्य बच्चों के साथ—साथ दिव्यांग बच्चों को भी शिक्षा से जोड़ने का लक्ष्य रखा गया है साथ ही किसी भी बच्चे को शिक्षा के लिए मना नहीं करना है और सभी को शिक्षा प्रदान करने के लिए रजिस्ट्रेशन करना अनिवार्य है।

समावेशी शिक्षा का प्राथमिक उद्देश्य—

1—सबको शिक्षा का अधिकार।

2— बाधामुक्त वातावरण।

3—दिव्यांगजनों को समुचित और समृद्ध माहौल

प्रदान करना।

4—बच्चों की योग्यता की पहचान कर उनको आत्मनिर्भर बनाना।

5—बिना भेदभाव के शिक्षा प्रदान करना।

6— आवश्यकता अनुसार सहयोग देना।

7—बच्चे में सकारात्मक भावना का विकास।

8— सभी प्रकार के बच्चों को शिक्षा देना।

कोविड — 19 क्या है ? — हम सभी जानते है कि कोरोना वाइरस कितना खतरनाक है हम सब इस शताब्दी के सबसे खतरनाक बीमारी से जूझ रहे है। सर्वप्रथम COVID—19 का मतलब समझने का प्रयास करते है COVID—19 में CO का तात्पर्य कोरोना से VI का सन्दर्भ विषाणु तथा D बीमारी को एवं 19, वर्ष 2019 (बीमारी के बारे में जानकारी का वर्ष) को इंगित करता है इसका नामकरण वैश्विक एजेंसी विश्व पशु स्वास्थ्य संगठन तथा खाद्य एवं कृषि संगठन द्वारा जारी दिशा निर्देशों (2015) के आधार पर किया गया है।

समावेशी शिक्षा में डिजिटल लर्निंग —

दुनिया भर में कोरोना महामारी के प्रकोप के बाद डिजिटल लर्निंग समय की जरुरत बन गयी है लेकिन ऑन कैम्पस और ऑनलाइन का मिश्रण सर्वोत्तम माना जा रहा है। सोशल डिस्टेंसिंग और लॉकडाउन के कारण लगभग दो वर्ष से भारत एवं दुनिया भर में छात्रों की पढाई बाधित रही है। वार्षिक छात्र अनुभव सर्वेक्षण के अनुसार छात्रों में काफी तनाव रहा है और पूरे भारत वर्ष एवं दुनिया भर में इसका प्रभाव देखने को मिला है। इस दौरान बच्चों की पढाई बाधित न हो इसलिए इनके पढाई के अलग—अलग तरीकों का एजाज किया जाने लगा एवं इसका उपयोग होने लगा इसमें छात्र घर बैठे इन्टरनेट की सहायता एवं विभिन्न प्रौद्योगिकी के इस्तेमाल द्वारा पठन—पाठन का कार्य करने का प्रयास किया गया। कुछ विश्वविद्यालयों में पहले से ही इस रास्ते का इस्तेमाल कर रहे थे जिसमे कुछ विषयों को ऑन कैम्पस और ऑनलाइन का मिश्रण तरीके से अपनाया जा रहा है।

महामारी के दौरान ऑनलाइन शिक्षण अक्सर एक समझौता रहा है अच्छे शिक्षण डिजाइन में समय लगता है क्योंकि शिक्षक अपने शिक्षार्थियों अनुशासन के अनुरूप पाठ्यक्रम, संशोधन और मूल्यांकन बनाते है मार्च 2020 से अधिकांश शिक्षण संस्थान कोविड 19 के प्रभाव के कारण तत्काल बंद कर दिए गए। छात्रों के भविष्य को ध्यान में रखते हुए शिक्षण कार्य बाधित न हो इस पर मंथन शुरू कर दिया गया। मंथन के पश्चात ऑनलाइन शिक्षण के विकल्प पर जोर दिया गया और इस ऑनलाइन शिक्षण हेतु ई—लर्निंग/डिजिटल लर्निंग के प्रयोग की शुरुवात की गयी।

डिजिटल लर्निंग — डिजिटल लर्निंग एक प्रकार की शिक्षा है जो प्रौद्योगिकी के साथ निर्देशात्मक अभ्यास के साथ होती है जो प्रोद्योगिकी का प्रभावी उपयोग करती है इसमें मिश्रित और आभासी तरीके से सीखने सहित प्रथाओं के व्यापक स्पेक्ट्रम के अनुप्रयोग शामिल है।

डिजिटल लर्निंग को कभी—कभी ऑनलाइन लर्निंग या ई—लर्निंग के साथ भ्रमित किया जाता है डिजिटल लर्निंग में उपरोक्त अवधारणाओं को शामिल किया गया है।

डिजिटल लर्निंग के अंतर्गत निम्नाकिंत साफ्टवेयर की सहायता से लर्निंग की जा सकती है —

स्वयं : SWAYAM

स्वयं प्रभा : SWAYAM PRABHA

राष्ट्रीय डिजिटल लाइब्रेरी : National Digital Library (NDL)

सुगम्य पुस्तकालय

स्पोकन ट्यूटोरियल : Spoken Tutorial

शिक्षा के लिये मुफ्त और मुक्त स्रोत सॉफ्टवेयर (Free and Open Source Software for Education & FOSSEE)

वर्चुअल लैब : Virtual Lab

ई : यंत्र— e-Yantra

ई पाठशाला (e-Pathshala)

नेशनल रिपोजिटरी ओपन एजुकेशनल रिसोर्सेज (NROER)

मोबाइल एप्लीकेशंस

त्वरित प्रतिक्रिया : Quick Response (QR)

सारांश : (SARANSH)

ई बस्ता

पी एम ई विद्या कार्यक्रम : दीक्षा (DIKSHA)

राष्ट्रीय शैक्षणिक डिपाजिटरी (एन.ए.डी.) (NAD) (National Academic Depository) डिजी लॉकर

ई पीजी पाठशाला

उपरोक्त डिजिटल लर्निंग के विकल्प के माध्यम से दिव्यांग बच्चों को भी समावेशी शिक्षा के अंतर्गत शिक्षा प्रदान की जा सकती है। कुछ डिजिटल लर्निंग विकल्पों में दृष्टि बाधित एवं श्रवण बाधित विद्यार्थियों को भी ध्यान में रखकर भी निर्मित किया गया है जिसमें स्क्रीन पर लिये हुए शब्दों को बोल–बोलकर पढ़ने के तरीके तथा कुछ में सांकेतिक भाषा के भी विकल्प दिए गये है जिससे श्रवण बाधित बच्चों को डिजिटल लर्निंग का उपयोग करने में सरल व सहज हो सकें।

निष्कर्ष–उपरोक्त विषय पर चर्चा करते हुए देख पाते है कि 21वीं सदी की अब तक की सबसे बड़ी महामारी के रूप में कोविड 19 उभर कर सामने आता है। यह परिस्थिति केवल दिव्यांगजन के लिए ही नहीं सब के लिए एक बड़ी चुनौती के रूप में हम सब के समक्ष उत्पन्न हुई। चारों तरफ हाहाकार मचा हुआ था किसी को कुछ नहीं समझ में आ रहा था सभी सामाजिक दूरी एवं मास्क पर जोर दे रहे थे, घर से बाहर निकलना भी कोविड–19 की गाइड लाइन के अनुसार कठिन था, इसी बीच बच्चों के शिक्षा की भी सभी को चिंता सताये जा रही थी कि इस बार की शिक्षा का क्या होगा ? इन्हीं परिस्थितियों के बीच शिक्षा को अलग–अलग स्वरूपों में देने की बात चल पड़ी और विकल्प के रूप में ऑन लाइन शिक्षा व्यवस्था का प्रयास शुरू किया गया। इस ऑनलाइन शिक्षा व्यवस्था में सामान्य बच्चों के साथ दिव्यांग बच्चों के लिए भी शिक्षा की व्यवस्था की गयी। सामान्य बच्चों के साथ दिव्यांग बच्चों के लिए भी शिक्षा की व्यवस्था को समावेशी शिक्षा कहते है और समावेशी शिक्षा में डिजिटल लर्निंग की ओर ध्यान गया और डिजिटल लर्निंग के विभिन्न स्वरूप जैसे स्वयं, स्वयं प्रभा, ई पाठशाला, ई पीजी पाठशाला, ई बस्ता, पीएम ई विद्या कार्यक्रम आदि के माध्यम से समावेशी शिक्षा द्वारा दिव्यांगजनों की शिक्षा का प्रयास किया गया।

संदर्भः–

1– जोसेफ र. ए. (2004) विशिष्ट शिक्षा और पुनर्वास, वाराणसी, समाकलन पब्लिकेसन।

2– सर्व शिक्षा अभियान (2004) मनुअल फार प्लानिंग एंड एप्रेसल एम.एच.आर.डी.एलीमेंट्री एजुकेशन और लिटरेसी नयी दिल्ली।

3– सुब्बा राव टी. ए. (री प्रिंट 2006) मैनुअल आन डेवालोपिंग कम्युनिकेशन स्किल इन पर्सन विथ मेंटल रीटार्डेसनएन आई एम एच सिकन्द्राबाद।

4– संजीव, के. (2009) विशिष्ट शिक्षा, जानकी प्रकाशन पटना।

5– अरुण एन. (2013) विकलांगता की चुनौती, योजना भवन, संसद मार्ग, नयी दिल्ली।

6– गाताडे एस. (2013) विकलांगता एवं प्रद्योगिकी योजना भवन, संसद मार्ग, नयी दिल्ली।

7– चढ्ढा ए (2016) भारत में समावेशी शिक्षा की रुपरेखा योजना भवन, संसद मार्ग, नयी दिल्ली।

8– पाण्डेय एस. के. (2016 जनवरी) डिजिटल इंडिया से बदलेगी शिक्षा कि तस्वीर, नयी दिल्ली

9– तुली, उ. (2013) समावेशी शिक्षा कि एक वास्तविकता, योजना भवन, संसद मार्ग, नयी दिल्ली।

10–सिंगल निधि (2013) विकलांग बच्चों कि शिक्षा, योजना भवन, संसद मार्ग, नयी दिल्ली।

11–ओझा एस के (2013) संख्या एवं नगरी कारण, बौद्धिक प्रकाशन प्रयागराज।

12– शर्मा,आर .एस. (2016 जनवरी) शिक्षा में प्रद्योगिकी अधीर पीढ़ी कि आशाएं एवं आकाक्षाएं, नयी दिल्ली।

सहायक प्राध्यापक, शिक्षा विभाग,
गुरु घासीदास केन्द्रीय विश्वविद्यालय,
बिलासपुर–495009 (छ.ग.) मो. 9335054211

‘शिकंजे का दर्द’ में स्त्री अस्मिता के प्रश्न

– निर्मल सुवासिया (शोधार्थी)

भारतीय समाज में स्त्री का अस्तित्त्व और अस्मिता के लिए संघर्ष प्राचीन समय से दिखाई देता है। सृष्टि में आये हर जीव का स्वतंत्र अस्तित्व होता है। वह हमेशा आजाद रहने की कोशिश करता है पर समाज के बनाए ढाँचे में जब वह अपने को आंकता है तो स्वयं को बन्धनों में जकड़ा हुआ पाता हैं। प्रकृति प्रदत्त स्वतंत्रता समाज के पिंजरे में बन्द होती है, यह तो सभी इन्सानों में और कुछ प्राणियों में भी दिखाई देता है। समाज में स्वैच्छाचार पर रोक लगायी जाती है। कुछ हद तक तो यह ठीक भी है पर नारी के संदर्भ में उनका अस्तित्त्व पुरुष के हाथ में दिखाई देता है। उसे अपने अस्तित्त्व और अस्मिता को बनाए रखने के लिए भी संघर्ष करना पड़ता है।

‘शिकंजे का दर्द’ जैसा कि नाम से ही स्पष्ट होता है कि शिकंजा यानी ‘पंजा’ जिसकी जकड़न में रहकर कुछ भी कर पाना मुश्किल हो। शिकंजा यानी ऐसा कठघरा जिसमें कैद होकर, उससे बाहर निकलना कठिन हो अर्थात् उसमें उलझकर ही रह जाना। शब्दकोश के अनुसार देखा जाय तो शिकंजे का अर्थ दबाने, कसने का यंत्र से लगाया जाता है। शिकंजे का अर्थ एक प्रकार का प्राचीन यंत्र है जिसमें अपराधी की टांग कस दी जाती है। शिकंजा वह यंत्र है जिसमें धुनकने के पहले रुई को कसा जाता है। शिकंजे का अर्थ कोल्हू से भी लगाया जाता है। जिस तरह किसी ताकतवर को शिकंजे में जकड़कर उसकी पूरी ताकत को नगण्य बना दिया जाता है, ठीक उसी तरह लेखिका को सामाजिक जीवन की मनुवादी विषमता ने, वर्णवादी जातिवादी समाज व्यवस्था ने अपने शिकंजे में जकड़कर रखा, जिसके परिणामस्वरूप उन्हें मिला केवल पीड़ा, दर्द और छटपटाहट।

सदियों से दोहरे दंश को झेलने वाली दलित स्त्रियाँ भी आज बोलने लगी है, अपने अधिकारों की लड़ाई लड़ने लगी है, प्रगति के मार्ग पर आगे बढ़ते हुए अपनी व्यथा–कथा लिखने लगी है। फिर भी देखा जाए तो प्रत्येक दलित स्त्री को क्या उसके मानवाधिकार मिल सके हैं? आज भी उनके साथ शोषण की घटनाएँ क्या नहीं होती? विषमतावादी इस भारतीय समाज में जातिभेद, ऊँच–नीच की भावनाएँ क्या अब नहीं है?

‘शिकंजे का दर्द’ एक ऐसी ही स्त्री सुशीला टाकभौरे के भोगे हुए जीवन पर आधारित आत्मकथा है, जो अपने समाज में सुधार लाने के लिए दृढ़ संकल्पित है। लेखिका एक प्रकार से अपने सोए हुए समाज के लिए जागरूक व प्रेरणादायी पात्र के रूप में नजर आती है। इस आत्मकथा में दलित स्त्री जीवन की घनीभूत पीड़ा के अनेक चेतना भर देने वाले प्रसंग हैं, जो अपने समय के समाज की मानसिकता का साक्षात्कार कराते हैं। आज भी समाज में यह मानसिकता है जो नासूर बन चुकी है। इन्हीं को समाज के सामने लाने का चेतनात्मक प्रयास है सुशीला जी का शिकंजे का दर्द। लेखिका दलित वर्ग से होने के साथ स्त्री होने की पीड़ा की भी भोग्या है। एक स्त्री की आत्मकथा मनुवादी द्वारा निर्मित पुरुष सत्ता प्रधान समाज में स्त्री शोषण को उजागर करती है। स्त्री धरती के समान होती है, वह सब कुछ सहती है फिर भी धीरज रखती हुई अपनी धुरी पर घूमती है। लेकिन कब तक? यह प्रश्न उसकी चेतना और अस्मिता का बोध कराता है। आदर्शों के नाम पर उसका शोषण सदियों से किया जा रहा है। अपने प्रति परिवार के शोषण, अत्याचार की व्यथा बताने वाली स्त्री को समाज कभी अच्छा नहीं कहता। अपने अधिकारों की बात करने वाली स्त्रियों को भी समाज अच्छा नहीं

मानता है। समाज की यह मान्यता रही है कि 'स्त्री देवी है या कुलच्छनी।' सच तो यह है कि स्त्री को कभी इन्सान माना ही नहीं गया। वह तो हाड़–मांस की मानव नहीं बल्कि आदर्शों का पुतला है, जो आदर्शों के लिए जीती है और आदर्शों के लिए मर जाती है। वह समाज से अपने सुख–दुःख का हिसाब कैसे मांग सकती है? 'शिकंजे का दर्द' में संताप है दलित स्त्री होने का। इसमें शोषित, पीड़ित, अपमानित, अभावग्रस्त दलित स्त्री सुशीला टाकभौरे के जीवन की व्यथा है । स्त्री होना ही जैसे व्यथा की बात है।

लेखिका सम्पूर्ण आत्मकथा में अनेक कठिन प्रश्न समाज से करती हैं, जिनके उत्तर सदियों से नदारद हैं, किन्तु उनके इन प्रश्नों से मुंह नहीं मोड़ा जा सकता, 'क्या यही है भारतीय समाज, भारतीय सहिष्णुता? विश्व बन्धुत्व की बात करने वाले अपने पड़ोसी से भी मानवता–भाईचारे का सम्बन्ध नहीं रख सकते?"[1] ऊंची जाति वालों द्वारा किराए पर दिए मकान में मृत्यु पर रोने की मनाही हो, ऐसे व्यक्तियों को मनुष्य कहा जाना शर्मनाक है। वे ऐसे हृदयहीन, असामाजिक व्यवहार, परम्परा, कानून, रीति–रिवाज पर बार–बार प्रश्न कर चोट करती हैं। यह घटना लेखिका को अन्याय विरुद्ध लड़ने के लिए प्रतिबद्ध करती है। एक बनिये के मरणासन्न कुत्ते के प्रति संवेदनशील होते लोग अपने पड़ोसियों के प्रति जाति के कारण संवेदन शून्य हो जाते हैं। लेखिका ऐसे लोगों की कुटिल नीतियों का पर्दाफाश करने का संकल्प लेती है। वे ऐसी सोच के पीछे छल–कपट का इतिहास देखती हैं। ऊंच–नीच की विषमता को धर्म व परम्परा के रूप में बनाये रखने के पीछे यही वर्चस्ववादी मानसिकता चालाकी से काम करती है, ऐसा वे मानती हैं।

लेखिका कहती हैं – जो माँ बच्चे को जन्म देती है, पालती–पोसती है, उसका ही नाम समाज में अपने बेटी–बेटों के साथ नहीं जुड़ता, जबकि पिता का नाम, सरनेम जुड़ता है। विवाह के बाद बेटियों के नाम के साथ पति का नाम और सरनेम जुड़ जाता है, पिता का नाम और पहचान छूट जाती है। इसलिए बेटी परायी वस्तु मानी जाती है। बेटियों के प्रति समाज में ऐसी मानसिकता हमारे रीति–रिवाज व सामाजिक परम्पराओं के कारण ही समाज में व्याप्त हैं। गाँव के बड़े–बुजुर्ग अक्सर ये बातें करते हैं – 'लड़कियां तो चिरैया हैं, समय आते ही उड़कर परदेस चली जायेंगी। लड़कियां उनकी ससुराल की अमानत हैं, पाल–पोस के उन्हें लौटा देंगे। लड़कियां चूल्हे का लूँगड़ा (जलती लकड़ी) हैं। जहाँ का लूगड़ा वहीं जले तो अच्छा है।''[2]

समाज की ऐसी मानसिक भावनाओं का दंश स्त्रियाँ सदैव से झेलती आयी हैं। ऐसी भावनाएँ भी शिकंजा बनकर लड़कियों की प्रगति में अवरोधक बनी रहती हैं। इस तरह के शिकंजे की शिकार लेखिका भी हुई है। लेखिका लिखती हैं – 'मैं कक्षा में सबसे पीछे बैठती थी। स्कूल के सभी शिक्षक और बच्चे मेरी जाति के विषय में जानते थे। सबके मन में मेरे लिए एक निश्चित दूरी थी। मैं नहाकर, साफ–सुथरे कपड़े पहनकर स्कूल जाती फिर भी स्कूल के अध्यापकों और चपरासी के लिए अछूत ही थी। मुझे छू जाने पर वे नहाकर शुद्ध होते, यह बात मैं जानती थी। ये मुझसे दूर रहें इसकी अपेक्षा मैं स्वयं उनसे दूर रहती ताकि मेरे कारण किसी को तकलीफ या परेशानी न हो।'[3]

देखा जाय तो यहाँ एक दलित स्त्री के स्वाभिमान, अधिकार व जाति के प्रति द्वेष दिखाई पड़ता है जिससे वह घृणा करती है और अपने जीवन को कोसती नजर आती है। उसके लिए जाति व गरीबी सबसे बड़ा 'शिकंजा' नजर आता है जिसमें वह अपने को सदियों से जकड़ी हुई पाती है। जिनके लिए भगवान के नाम से सब अच्छा है, वे भगवान की स्तुति ही करेंगे लेकिन जिनके लिए कुछ अच्छा नहीं जिन्हें सुख–सुविधा, अवसर अधिकार जैसी कोई चीज नहीं, वे भला भगवान

को क्यों न कोसे? नानी की गालियाँ देते सुना तो मैं समझ गई – ये सताये हुए लोग अपने शोषकों को इसी तरह गालियाँ देते हैं नानी अपना गुस्सा कुछ इस तरह निकालते हुए बड़बड़ाती थी – 'हे भगवान, तेरे मुह में कीड़े पड़ जायें। कोई तोई पानी देने वालो न रहे। तू तड़फ – तड़फ कर मरे । कोई तोरी मौत मट्टी पर न रोये।[4] नानी के लिए यह भगवान शायद दुश्मन रूपी वह इन्सान ही होगा जिसने वर्ण और जाति बनायी। तभी तो शोषित, पीड़ित इस तरह उसे खत्म करना चाहते हैं।

जहाँ एक तरफ जाति का दंश दलित स्त्री को झेलना पड़ता है वहीं दूसरी तरफ पितृसत्ता के दंश को भी झेलना मानो दलित स्त्रियों की नियति बन गयी है। पितृसत्ता के बोझ को तो सभी दलित स्त्रियाँ झेलती हैं। किन्तु कुछ स्त्रियों का यह दंश कुछ अधिक ही विकराल व अत्यन्त कष्टदायक होता है जो जिन्दगी भर उन्हें डंक मारता रहता है। इसे हम तिहरा शोषण भी कह सकते हैं। यह दंश है अनमेल विवाह का, जो ज्यादातर दलित समाजों में ही देखा जाता है। ऐसा नहीं कि उनके माता–पिता केवल गरीब ही होते है। अच्छे परिवारों की लड़कियाँ भी ऐसे दंश को झेलने को मजबूर की जाती हैं।

ऐसा अन्याय उनके साथ केवल इसलिए होता है कि वे स्त्री होती हैं और खुद से ज्यादा अपने माता–पिता की खुशी व सम्मान की फिक्र करती है। मगर प्रश्न उठता है कि उनके माता– पिता क्यों नहीं उनकी खुशियों, इच्छाओं व सपनों की फिक्र करते हैं कि उनका भी एक अपना सपना होता है। क्यों अपनी इच्छाओं को उनका भाग्य बताकर उनके ऊपर जबरजस्ती थोपा जाता है, जिसका दंश उन्हें उम्र भर डंक मारता रहता है। ऐसे ही अनमेल विवाह रूपी दंश की शिकार हमारी लेखिका भी हुई हैं। जिन्दगी के 60 वर्ष के इस पड़ाव पर ये आकर आज भी खुद से यह सवाल करती हैं कि – 'मैं इतने साल तक इस तरह कैसे रही? मैं अनपढ़, गँवार नहीं थी। मैं लावारिस अनाथ भी नहीं थी । ऐसा भी नहीं कि धन ऐश्वर्य भोगने के लालच में मैंने इनसे शादी की हो फिर मेरे साथ ऐसा क्यों हुआ ? इसका जवाब कौन देगा।"[5] इस तरह के शोषण भी स्त्रियों के लिए एक शिकंजा बनकर उन्हें पल–पल घुटने के लिए मजबूर करता है जिससे उनका मनोबल गिरता है और उनकी मानवीय गरिमापूर्ण अस्मिता आहत होती है।

असल में देखा जाय तो यह दंश रूपी शिकंजे का दर्द केवल एक स्त्री का ही दर्द नहीं बल्कि न जाने कितनी स्त्रियाँ लेखिका की भाँति जिंदगी का कड़वा संताप भोगती है । न शिकवा, न शिकायत, जिंदगी का जहर चुपचाप पीते रहना, वे अपनी किस्मत मान लेती हैं। किन्तु समय बदला है, परिस्थितियाँ भी कुछ सुधरी हैं, स्त्री के अन्दर चेतना जागी है और वे आज सही गलत पर प्रश्न करने लगी है। सुशीला जी लिखती हैं एक बार कॉलेज के सुपरवाइजर सर को अपने प्रति उपेक्षापूर्ण और भेदभावपूर्ण व्यवहार के लिए उन्हें खूब बातें सुनाई किसी की परवाह नहीं की और गुस्से के साथ जोर से बोली – 'सर, आप हमेशा मुझे ऐसा कहते हो प्राचार्य जी से मेरी झूठी शिकायत करते हो। दूसरे प्राध्यापक लेट आयें, क्लास न लें तब आप उन्हें कुछ नहीं कहते, मेरे साथ ही ऐसा व्यवहार क्यों करते हो?"[6] सुशीला जी के ऐसे चेतना भरे स्वर सुन सुपरवाइजर सर गुस्से से बोले आप किससे बात कर रही हो? ठीक से बात करो।' वे टेलीफोन डायल करने लगे। लेखिका समझ गयी, सर प्राचार्य जी को फोन लगा रहे हैं। यह देख लेखिका को और गुस्सा आया और वे बोली सही बात सामने आना ही चाहिए। लेखिका और जोर से बोली "आप मेरे साथ भेदभाव करते हो, मेरे साथ जातिभेद मानते हो, इसलिए मुझे जानबूझकर परेशान करते हो।[7] 'उनकी आवाज में न जाने कितने दिनों के दंश थे जो आज उनकी चेतना के साथ सबके सामने

बाहर निकले थे। कहते हैं शोषण करना यदि अपराध है तो शोषण सहना उससे कहीं अधिक अपराध। सुशीला जी इस बात को अब समझने लगी थी। तभी तो वे पूरी हिम्मत के साथ सुपरवाइजर से बोली "सर ये आपका कालेज नहीं है। आप यहाँ के मालिक नहीं हो। आप भी यहाँ नौकरी करते हो। आपसे ऊपर, आप से बड़े और लोग भी हैं। मैं उनके पास जाकर आपकी शिकायत करूँगी कि आप मेरे साथ भेदभाव और जातिभेद करते हो। मैं प्राचार्य जी से कहूंगी, मैं मैनेजमेंट से कहूँगी, आप मेरे साथ अन्याय करते हो, मुझे जानबूझकर परेशान करते हो ।"[8]

इस तरह से 'शिकंजे का दर्द' स्त्री अस्मिता के प्रश्नों को उठाती है। स्त्री के साथ हो रहे भेदभाव, शोषण, प्रताड़ना, असामनता का प्रतिरोध करती हैं। आत्मकथा की भूमिका मनोगत में उन्होंने स्वयं कहा है "आत्मकथा लिखने का मेरा उद्देश्य समाज को उसकी सच्चाई बताना है। लोग इस सच्चाई को स्वीकार करे, इन तथ्यों को समझे, मंथन करे और भविष्य के समतावादी मानवतावादी भारतीय समाज के निर्माण के लिए कदम उठाएं।[9]

मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय,
उदयपुर (राज.) मो. 9660795075

संदर्भः—

1. सुशीला टाकभौरे, शिकंजे का दर्द, 2011, वाणी प्रकाशन दिल्ली, पृ. 171—172
2. वही, पृ. 17
3. वही, पृ 18
4. वही, पृ 27
5. वही, पृ 204
6. वही, पृ 260
7. वही, पृ 260
8. वही, पृ 260
9. सुशीला टाकभौरे, शिकंजे का दर्द, 2011, वाणी प्रकाशन दिल्ली, मनोगत (भूमिका) से ।

बेरोजगारी पर कोविड—19 व अन्य कारकों का प्रभाव

– राकेश मोखरा
– डॉ. कृष्ण परूथी
– डॉ. संदीप कुमार

शोध सार : वर्तमान समय में बेरोजगारी किसी भयानक महामारी की तरह पूरे भारत में फैल चुकी है। विश्व बैंक के पूर्व चीफ इकोनॉमिस्ट कौशिक बसू ने टिप्पणी दी है कि भारत में 24% युवा बेरोजगार हैं। यह दर विश्व में सबसे अधिक है। बढ़ती बेरोजगारी के अनेकों कारण हैं, किंतु फिर भी बढ़ती जनसंख्या, भारत में बेरोजगारी की समस्या का एक प्रमुख कारण हैं। कोविड के सालों के दौरान रोजगार सृजन की स्थिति काफी चिंताजनक रही है। लेकिन आँकड़ों का सच यह भी बयां करता है कि देश में रोजगार के हालात पहले भी अच्छे नहीं रहे हैं और कोविड महामारी के बाद तो रोजगार की स्थिति लगातार बद से बदतर हो गई है। इस शोध पेपर के माध्यम से समाज की नींव को खोखला करने वाली बेरोजगारी के तथ्यों का एक सटीक विश्लेषण करने का प्रयास किया है।

बीज शब्द : बेरोजगारी, महामारी, कोविड, विश्व बैंक।

शोध परिचय : बेरोजगारी एक गंभीर सामाजिक और आर्थिक मुद्दा है, इसके कारणों को निर्धारित करने और इसे बेहतर तरीके से कैसे संबोधित किया जाए, इसके लिए बेरोजगारी के आकलन की एक मजबूत प्रणाली स्थापित की जानी चाहिए। कोरोनाकाल के दौरान लाखों की संख्या में लोगों को अपनी नौकरी से हाथ धोना पड़ा । सांख्यिकी एवं कार्यक्रम कार्यान्वयन मंत्रालय के पीरियोडिक लेबर फोर्स सर्वे में जुलाई 2020 से जून 2021 तक, 4.1 लाख लोगों के आंकड़े एकत्रित किए गए,इन आंकड़ों के अनुसार, 37% व्यक्तियों को 6 माह से लेकर एक साल तक बिना रोजगार के घर बैठना पड़ा। करोना महामारी आने के बाद ऑनलाइन

काम करने वाले व्यक्तियों को ज्यादा तवज्जों दी जा रही है, इन्हें कम तनख्वाह पर रखा जा रहा है कहीं ना कहीं लोगों को अल्प बेरोजगारी का सामना करना पड़ रहा है। इससे सामाजिक कल्याण की भावनाओं की अनदेखी की जा रही है, जो कि विकासात्मक पहलुओं की दृष्टि से सही नहीं है। आनलाईन काम करने वाले कर्मचारियों की सैलरी से संबंधित नियम बनाने की आवश्यकता महसूस की जा रही है।

शोध विधि : यह अध्ययन मुख्य रूप से वर्णनात्मक है। यह द्वितीयक डेटा विभिन्न वेबसाइटों, सर्वेक्षणों, शोध–पत्रों, लेखों, पत्रिकाओं और सरकार द्वारा प्रकाशित रिपोर्टो से लिया गया है।

शोध अध्ययन के उद्देश्य :

1. भारत में निरंतर बढ़ती बेरोजगारी के कारकों को पहचानने हेतु।

2. करोना महामारी के कारण फैली बेरोजगारी के अध्ययन हेतु।

3. बढ़ते निजीकरण के कारण बेरोजगारी पर प्रभाव।

बेरोजगारी के मुख्य कारक :

1. रिटायर व्यक्तियों को काम पर रखना : कोविड –19 महामारी के बाद केंद्र की स्थायी नौकरियों में 27% तथा राज्यों द्वारा दी जानेवाली स्थायी नौकरियों में 21% की कमी आई है। कोरोना महामारी के बाद स्थायी नौकरियों में कमी तथा रिटायर व्यक्तियों को जॉब पर रखना भी भारतीय बेरोजगारी दर ज्यादा होने का एक अहम पहलू है। इससे नए व्यक्तियों के लिए रोजगार के रास्ते बंद हो जाते हैं।

2. मैन्युफैक्चिरंग सेक्टर में स्थिरता : 2022 में निजी क्षेत्रों को लगातार समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। रूस यूक्रेन युद्ध से एक्सपोर्ट पर भी सबसे ज्यादा असर पड़ा है। पिछले कुछ महीनों में कई जगह बिजली संकट आया तो मैन्युफैक्चरिंग सेक्टर भी प्रभावित हुआ, मैन्युफैक्चरिंग सेक्टर में 50% से ज्यादा यूनिट्स ने एक शिफ्ट कम कर दी। 2 माह में 3 लाख से ज्यादा रोजगार गए। अधिकांश रोजगार मैन्युफैक्चरिंग सेक्टर से पैदा होते हैं। लेकिन बीते कुछ वर्षों से इस सेक्टर में विकास की दर काफी कम रही है। इसमें नया निवेश नहीं आ रहा है , उत्पादन कम होने पर काम करने वालों की मांग लगातार घटने से भी बेरोजगारी बढ़ी है।

3. नई–नई तकनीकों पर बल : केवल भारत ही नहीं, अपितु विश्व भर में यह स्थिति है कि तकनीकी व प्रौद्योगिकी पर आधारित अर्थव्यवस्था में काम करने योग्य आबादी की तुलना में रोजगार का सृजन काफी कम हो रहा है।

कोरोना महामारी के कारण बेरोजगारी की प्रकृति में बदलाव : इस समय देश को मुख्यतः संघर्षात्मक बेरोजगारी का सामना करना पड़ रहा है। कोरोना काल के दौरान, पीएलएफएस ने 1.11 लाख प्रवासियों पर सर्वे किया, इनके आंकड़ों के अनुसार, 44% लोग ऐसे रहे, जिन्हें नौकरी की तलाश में एक शहर से दूसरे शहर जाना पड़ा। वहीं, 44.6% लोगों को रोजगार की तलाश में एक गांव से दूसरे गांव जाना पड़ा। समयावधि में करीब 54% लोगों को रोजी–रोटी की तलाश में गांव से शहर भी जाना पड़ा। ऐसा संभव है कि उस दूसरे स्थान पर रोजगार के अवसर तो हैं, लेकिन रोजगार ढूंढने वाले व रोजगार देने वालों में मेल होने में कुछ समय लग जाए, ऐसा बाजार की अपूर्णताओं के कारण हो जाता है। इस समय अवधि में जो अस्थायी बेरोजगारी होती है उसे संघर्षात्मक बेरोजगारी कहते हैं। बाजार की अपूर्णताएं दूर होते ही संघर्षात्मक बेरोजगारी स्वतः ही समाप्त हो जाएगी।

निजीकरण, ठेका प्रथा और बेरोजगारी : भारतीय अर्थव्यवस्था में लगातार विनिवेश की प्रक्रिया को बढ़ाया जा रहा है, जिसके फलस्वरूप अर्थव्यवस्था में निजीकरण को बल जरूर मिला है, किंतु इसके साथ साथ ठेका प्रथा व्यवस्था को भी बढ़ावा मिला है, निजी संस्थानों द्वारा प्रोजेक्ट पूरा करने के लिए ठेके पर कम मजदूरी/तनख्वाह पर लोग हायर किए जाते हैं, जैसे ही प्रोजेक्ट पूरा होता है, लोग फिर से बेरोजगार हो जाते हैं।

सालाना कुल ठेका कर्मियों की संख्या	2021	24.31 लाख	पीएसयू में ठेका कर्मियों की संख्या	2021	4.99 लाख
	2020	13.25 लाख		2020	5.22 लाख
	2019	13.64 लाख		2019	3.38 लाख
	2018	11.79 लाख		2018	3.39 लाख
	2017	11.11 लाख		2017	2.68 लाख

स्रोत : मार्च 2022 लोकसभा में पेश आंकड़े

पढ़ाई और बेरोजगारी : भारत में पढ़े–लिखें लोगों में भी बहुत अधिक बेरोजगारी–दर्शाई गई है, जैसे –जैसे साक्षरता –दर बढ़ रही है, बेरोजगारी –दर भी समांतर बढ़ती जा रही है। इसका एक कारण साक्षर लोगों में काम करने की योग्यता का अभाव भी है

शिक्षा का स्तर	बेरोजगारी की % दर में
निरक्षर लोगों में बेरोजगारी दर	0.6%
प्राथमिक शिक्षा प्राप्त लोगों में बेरोजगारी दर	1.4%
माध्यमिक शिक्षा प्राप्त लोगों में बेरोजगारी दर	3.4%
हाईस्कूल व अधिक पढ़े–लिखे लोगों में बेरोजगारी दर	10.1%

स्त्रोत : पीरियोडिक लेबर फोर्स सर्वेक्षण

पीरियोडिक लेबर फोर्स कि रिपोर्ट के अनुसार भारत में हर साल 50 लाख युवा ग्रेजुएट पासआउट होते हैं। संस्थानों में वोकेशनल शिक्षा पद्धति के न होने के कारण हर साल लाखों की संख्या में स्नातक तो निकल रहे हैं, लेकिन अधिकांश काम करने लायक ही नहीं हैं। ऐसे में रोजगार होने के बावजूद योग्य लोग नहीं मिल पाते और बेरोजगारी की समस्या ज्यों की त्यों बनी रहती है।

बेरोजगारी को कम करने हेतु सुझाव : 1 रिक्त पदों को भरना एवं भर्तियों में पार्दर्शी प्रणाली को बढ़ावा देना : वित्त मंत्रालय के व्यय विभाग की रिपोर्ट के अनुसार, 1 मार्च 2020 तक स्वीकृत पदों की संख्या 40,04,941 हैं, रिपोर्ट के अनुसार केंद्र में कुल पदों के 21% पद खाली पड़े हुए हैं। खाली पड़े रिक्त पदों को भरके तथा अटकी हुई भर्तियों को पारदर्शी तरीके से पूरा करके ही रोजगार का सृजन संभव है।

2. जनसंख्या नियंत्रण की नीति में बदलाव : सिंगल चाइल्ड को नौकरियों में आरक्षण देकर जनसंख्या दबाव घटाकर बेरोजगारी दर कम की जा सकती है।

3. राष्ट्रीय रोजगार नीति में बदलाव : उपलब्ध टास्क फोर्स में कौशल की कमी को देखते हुए प्लंबिंग, मिस्त्री, बढ़ई, मैकेनिक के कुछ ऐसे नए कोर्स शुरू किए जा सकते हैं, जिनसे कार्यरत लोगों को प्रोफेशनल बनाया जा सकेगा। इससे नई शिक्षा प्रणाली व रोजगार अवसरों के लिए आवश्यक योग्यताओं के बीच सन्तुलन स्थापित करने में आसानी हो सकेगी।

4.निर्यात को बढ़ावा तथा आयात प्रति स्थापन करना : वाणिज्य – उद्योग मंत्रालय द्वारा जारी आंकड़ों के अनुसार जून 2022 में देश का निर्यात 16.8% बढ़कर लगभग 3 लाख करोड़ रुपए हो गया है, किंतु इसके साथ–साथ आयात में भी 51% की बढ़ौतरी दर्ज की गई है। निर्यात की तुलना में आयात ज्यादा हुआ है। बिना आयात प्रतिस्थापन के उत्पादन नहीं बढ़ेगा, जिससे रोजगार के अवसरों में कमी आएगी।

निष्कर्ष : वर्तमान समय में भारत में फैली बेरोजगारी का मुख्यकारण अटकी हुई भर्तियां तथा कोरोना महामारी आने के गत 2 वर्षों में रोजगार सृजनशीलता में काफी कमी महसूस की गई है। विश्व की किसी भी अर्थव्यवस्था में, जहाँ बेरोजगारी की दर निरंतर बढ़ने की प्रवृत्ति पाई जाती है तो वहां क्रय शक्ति स्वतः ही कम हो जाती है । कोरोना महामारी से हुई अव्यवस्था के कारण भारतीय अर्थव्यवस्था में विकास की दर धीमी जरूर हुई है, किंतु इसका मुख्य कारण संघर्षात्मक बेरोजगारी है, अब जैसे कोरोना महामारी का प्रकोप कम होता जाएगा, रोजगार देने वालों और लेने वालों में संपर्क होता चला जाएगा, वैसे – वैसे बाजार की अपूर्णता स्वतः ही समाप्त हो जाएगी। क्योंकि भारत

एक ऐसा देश है, जहां विश्व की सबसे अधिक वयस्क आबादी का एक बड़ा हिस्सा श्रम शक्ति में शामिल है, ऐसा समाज परिवारों को खर्च करने के लिए स्वतः ही प्रेरित करता है तथा ये परिवार जैसे ही डिमांड करेंगे ,उत्पादन बढ़ेगा, उत्पादन करने हेतु काम करनेवाली टास्क फोर्स की मांग बढ़ेगी, इससे देश में और अधिक रोजगार अवसरों का सृजन होगा। देश में नई शिक्षा प्रणाली को लागू करके धीरे–धीरे शिक्षा क्षेत्र को रोजगार पर बनाने की कोशिश की जा रही है। अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि भारत में व्याप्त बेरोजगारी अल्पकालीन है, किंतु इसे बहुत जल्द नियंत्रण की स्थिति में लाना एक कड़ी चुनौती होगी।

1. राकेश मोखरा
2. डॉ. कृष्ण परूथी
3. डॉ. संदीपकुमार
(असिस्टेंट प्रोफेसर, वाणिज्य विभाग,
पंडित नेकीराम शर्मा गवर्नमेंट कॉलेज रोहतक,
महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय–124001) हरियाणा

संदर्भः–

1. www.cmie.com

2. Journal for Labour Market Research, Unemployment among younger and older individuals

3. Unemployment in the time of COVID-19: A research agenda :Journal of Vocational Behaviour

4. The Bhopal School of Social Sciences, 2020, A STUDY ON IMPACT OF COVID-19 PANDEMIC ON UNEMPLOYMENT IN INDIA

5. Federal Reserve Bank of Minneapolis Research on Employment and Unemployment by Kei-Mu Yi January 2011

6. Unemployment Rates During the COVID-19 by Congressional Research Service https://crsreports.congress.gov

7. Cohen J. Statistical power analysis for the behavioural science. 2nd ed. Hillsdale: Erlbaum; 1988.

8. Federal agency for employment. Unemployment over time. 2019 [cited 2019 Sep 1].

9. Hendeles, S.: The Center for Adult Employment. National Insurance Institute,

10. Research and Planning, Development Services Division (2008) (Hebrew)

11.Dietrich, H., Möller, J.: Youth unemployment :Europe-business cycle

12. institutional efects. Int. Econ. Econ. Policy 13(1), 5-25 (2016).

13.Winkelmann, L., Winkelmann, R.: Why are the unemployed so unhappy?

14.Employment Sector Employment Working Paper No. 70, I. L. O

15.Petrosky-Nadeau, Nicolas, Robert G. Valletta. 2020Unemployment Paths in a Pandemic Economy

हिन्दी लघुकथा में स्त्री विमर्श

– डॉ. मालती बसंत

स्त्री विमर्श के विभिन्न आयाम है, स्त्री जीवन का फलक विस्तृत है, जिसके अनेक चित्र उकेरे जा सकते हैं। मैं तो स्त्री विमर्श की लघुकथाएं पढ़कर चकित हूं। स्त्री का चरित्र, उसका व्यक्तित्व कितना बहुआयामी है। वास्तव में स्त्री को मनुष्य जीवन की धुरी कहना उचित होगा जिसके इर्द–गिर्द रहकर ही मनुष्य जाति का जीवंत पुष्प खिल सका है। स्त्री को धारित्री वैसे ही नहीं कहा गया है इस शब्द के गहरे मायने है। स्त्री जितनी सहनशील होती है, उतना पुरूष नहीं। स्त्री हमेशा दूसरों का अधिक ध्यान रखती है बजाय अपने, इसलिए इस बात का लाभ उठाकर उसे दोयम दर्जे का मान लिया, जबकि यह स्त्री का त्याग है, उसकी उदारता है, कि वह अपने से ज्यादा दूसरों को महत्व देती है। स्त्री

का यहीं चित्रण लघुकथाओं में भी उभर कर आया है ।

स्त्री विमर्श के साहित्यिक जगत में केन्द्रीय स्थान बना लेने के साथ प्रायः हर विधा में स्त्री जीवन के विभिन्न संदर्भों को उजागर करने की प्रवृत्ति बढ़ी है। विगत दशकों में स्त्री संदर्भों पर आधारित लघुकथा लेखन का चलन भी बढ़ा है।

इसी क्रम में राजस्थान के लघुकथाकार डॉ. रामकुमार धोटड़ का लघुकथा संग्रह 'आधी दुनिया की लघुकथाएं' प्रकाशित हुआ है।

लेखक को नारी जगत की विभिन्न परिस्थितियां जानने की ललक है तथा यह ललक ही उसे उनके प्रति सहानुभूति उत्पन्न करवाने की चेष्टा करती दिखाई पड़ती है। नारी सशक्तिकरण के प्रति लेखक का गहरा आग्रह जिसके वशीभूत लेखक सृजन के प्रति तत्पर प्रतीत होता है ।[1]

नारी सशक्तीकरण के संदर्भ में मुंशी प्रेमचंद की लघुकथा 'देवी' सटीक बैठती है । यह एक विधवा पर केन्द्रित लघुकथा है, जो अनाथ और गरीब है । परन्तु उसके चरित्र और विचार बड़े सशक्त और दृढ़ है। जब वह दस का नोट फकीर के हाथ में थमाकर चल देती है 'वह आदमी' उससे पूछता है कि रात आपने फकीर को तो देवी ने बात काटते हुए कहा 'अजी वह क्या बात थी, मुझे नोट पड़ा मिल गया था मेरे किस काम का था' वस्तुतः उस आदमी का सिर उसके कदमों में झुक गया। इस लघुकथा का यह वाक्य जहां नायिका के चरित्र को ऊंचाई प्रदान करता है। वहीं नारी सशक्तिकरण के पक्ष में भी इस लघुकथा को पूरे स्वाभिमान से खड़ा करता है ।

जयशंकर प्रसाद की लघुकथा 'गुदड़ी के लाल' लघुकथा की नायिका स्वाभिमान में मर जाना पसन्द करती है, परन्तु बिना काम किये वह एक पैसा नहीं लेना चाहती है। अतः नारी हर रूप में हर स्थिति – परिस्थिति में अबला नहीं है।[2]

यों तो उस काल के अनेक लेखक–लेखिकाओं ने नारी सशक्तिकरण को बल देती रचनाएं लिखी है परन्तु वर्तमान समय में तो नारी सशक्तिकरण को केन्द्र में रखकर अनेक लघुकथाएं लिखी गई हैं, परन्तु उनकी विषयवस्तु पहले की लघुकथाओं की अपेक्षा वर्तमान लघुकथा में अन्तर दृष्टिगोचर होता है। इन बदलती स्थितियों को अभिव्यक्ति करती लघुकथाएं प्रकाश में आने लगी है। तात्पर्य यह है कि अब यथार्थ के धरातल पर देश विश्व में जो कुछ घटित होता है वह रचनाओं में स्थान पाने में समक्ष हो रहा है।

नारी सशक्तिकरण का एक अच्छा उदाहरण कान्ता राय की लघुकथा है 'अस्तित्व की यात्रा' इसमें अपने अस्तित्व को बचाये रखने के लिए स्त्री को कितना बाध्य और आन्तरिक संघर्ष करना पड़ता है। अंत में नायिका को कहना पड़ता है कि वह स्त्री नहीं कहलवाना चाहती। कान्ता राय की अन्य लघुकथाओं में भी स्त्री विमर्श दिखाई देता है।

'पुतले का दर्द' के यह वाक्य 'देह से परे औरत को एक मानव इकाई' के रूप में क्यों नहीं देखा जा सकता है?[3]

नारी अब इतनी सक्षम है कि वह अपने पथ का चुनाव स्वयं कर सकती है तभी तो वह अपने विवाह से संबंधित निर्णय लेती हुई कहती है 'पापा, मैं तब तक शादी नहीं करूंगी, जब तक कोई नौकरी ना मिले मुझे' अस्तित्व के प्रति, धर्माचरण का पालन करते हुए अब दृढ़ता से अपने पथ का चुनाव कर चुकी थी।[4]

महेश दर्पण की लघुकथा 'कमजोरी' इरादों से मजबूत अकेली औरत जमाने से लड़ सकती है लेकिन उसी का बेटा विवाहोपरांत जब उसे छोड़कर अन्यत्र बस जाता है । तब खून से सींचे बेटे का विरोध उसे तोड़ देता है। उसकी शक्ति शून्य हो जाती है। इसके बाद जब उसी औरत की बहन का लड़का उसकी तीमारदारी में उतरता है तब उस भांजे का अपनी मौसी के प्रति अतिरेक प्यार उसकी ममत्व की सारी गांठे खोल देता है, जिसके बदले में वह औरत भांजे को कहती है, कि वह न आया करे उसके आने से उसका कर्मजर्फ बेटा याद आकर उसे तोड़ देता है।[5]

निष्कर्ष के रूप में यही कहा जा सकता है स्त्री मनुष्य जाति का ही अंग है भिन्न नहीं । आज की नारी उसके 'मानव' स्वरूप में ही रहना चाहती है। वह देवी या दासी नहीं बनना चाहती। यह सच है कि देवी के रूप में सिर्फ उसे पूजा जा सकता है। दासी के रूप में उसकी सेवा को अनदेखा कर पद दलित किया जाता है। अतः आज लघुकथा में स्त्री लेखन की संख्या भी बढ़ी है। यह लघुकथा में स्त्री विमर्श लेखन, यह सुखद भी है। वास्तव में लघुकथा लेखन से स्त्री विमर्श ने विस्तार पाया है

स्वभाविक तौर पर ही घुल–मिल गया है कि लेखक जिस तरह का जीवन जीता है, अपने आसपास देखता है, उसे ही अपनी अभिव्यक्ति दे सकता है । स्त्री विमर्श नया नहीं युगयुगों से स्त्रियों की कथा चली आ रही है । क्यों कि मनुष्य है तो सुख–दुख है। बल्कि नारी पर अत्याचार बढ़े हैं घटे नहीं हैं। पहले चार दीवारी के अंदर होते थे। अंदर के अत्याचार सड़कों पर उतर आये हैं पहले घर के लोग करते है । अब बाहर के लोग करने लगे है क्योंकि आज की स्त्री पढ़ी–लिखी है । सभ्य है लेकिन उस पर अत्याचार कम नहीं हुए। पहले वह परजीवी थी आज वह स्वजीवी है। फिर भी जीवन में उसके संघर्ष कम नहीं हुए । लघुकथा में स्त्रियों की संख्या बढ़ना सुखद है। आज नारी अपनी पीड़ा को लघुकथा के रूप में ढाल रहीं है क्योंकि लघुकथा आज के दौर की सबसे अधिक धारदार विधा है तो स्त्री विमर्श व लघुकथा अब एक दूसरे की पूरक बन गई है।

92, सुरेन्द्र माणिक, अवधपुरी, भोपाल–462022 (म.प्र.)
मोबा. 9981775190

संदर्भः–

1. मेरी श्रेष्ठ लघुकथाएं डॉ. राम कुमार घोटड़ पृष्ठ– 143
2. संरचना – (6) 2013 संपादक कमल चोपड़ा पृष्ठ 23, 24
3. पथ का चुनाव – कांता राय पृष्ठ – 31
4. पथ का चुनाव पृष्ठ – 35
5. संरचना – 11 संपादक कमल चोपड़ा पृष्ठ – 36

आंबेडकरवादी हाईकु

– दामोदर मोरे

कहां से आया
प्रज्ञा का ये सुगंध
भीम की काया

प्रज्ञा के दीप
भीमने ही जलाये
रौशनी लाये

भारत भू पे
प्रज्ञा सूर्य है उगा
अंधेरा भागा

प्रज्ञा की गंध
भीम की किताबों में
संविधान में

प्रज्ञा प्रकाश
जरासा तो फैलावो
तम भगावो

प्रज्ञा बरसे
मन में जहां – जहां
खुशियां वहाँ

प्रज्ञा की आंखें
समता के भाव से
सभी को देखे

प्रज्ञा के हाथ
गरीबों का हमेशा
देते हैं साथ

प्रज्ञा के बीज
मन मन में बोना
सुख से सोना

इंद्रधनुष
उगा है रे प्रज्ञा का
भीम बाबा का

आया कहां से
प्रज्ञा का ये उजाला
दीक्षा भूमि से

भीम बजाये
ये बांसुरी प्रज्ञा की
जन हित की

प्रज्ञा के मोती
मन की सिपीयों में
मैं अमीरो में।

भीम की प्रज्ञा
पूनम की रौशनी
आनंद जनी

मेरे भीम थे
प्रज्ञा के कोहिनूर
ज्ञान में शूर

प्रज्ञा का पथ
चलो रे चलो सब
भीम का पथ

प्रज्ञा का स्वाद
भीमजी ने चखाया
चखो मीठास

प्रज्ञा चांदनी
कैसी चमक रही
खुश है राही

104 , टॉवर ए, मेट्रो रेसिडेंसी,
मेट्रो जंक्शन मौल, नेतिवली,
कल्याण (पूर्व) 421306 महाराष्ट्र
मोबा. 98 67 33 05 33

मानव जाति को एक दृष्टि से देखने की जरूरत

भय, संशय और घृणा – ये वे इंधन है, जो साम्प्रदायिक वैमनस्य को प्रज्वलित करते हैं। यद्यपि अधिकांश भारतीय विभिन्न सम्प्रदायों के बीच सद्भावना के पक्षधर हैं तथापि इसकी स्थापना अलग, किन्तु समानता के सिद्धांत पर नहीं हो सकती और न ही अल्पसंख्यक संस्कृति के बहुसंख्यक संस्कृति में विलय से, चाहे उसका स्वरूप जो भी हो। जब तक हृदय परिवर्तन नहीं होता, तब तक बाहरी रूप से प्रतीत होने वाली समानता आत्माविहिन होगी। परस्पर विरोधी सम्प्रदायों से सद् भावना पुरी मानव जाति को एक नए रूप में देखेन की दृष्टि प्राप्त करने तथा इस अनुभूति से ही संभव है कि जातीय और धार्मिक पक्षों को लेकर जो बाते पैदा होती है, उनका कोई आधार नहीं है।

मनुष्य के प्रत्येक जातीय ग्रुप अथवा संस्कृति में मानव अनुभूति का एक महत्वपूर्ण अंश घुला–मिला है। प्रत्येक के पास किसी बड़े समाज को देने के लिए कुछ न कुछ है। बहुसंख्यक वर्ग या उच्च जाति हो अथवा किसी भी धार्मिक समुदाय या जातीय, उपजातीय ग्रुप से जुड़ा अल्पसंख्यक वर्ग, जिम्मेदारी दोनों की बराबर–बराबर है। पहले को अपने उचताभिमान और बहुधा प्रदर्शित दबदबा रखने वाली प्रवृत्ति से उबरकर वास्तविक मित्रता तथा घनिष्ठ सहयोग की भावना सामने लानी होगी और दूसरे पक्ष को अतीत को भुलाने और लंबे समय के पीड़ादायक तथा धीरे–धीरे भरने वाले घावों के परिणामों से उपजी संदेह की भावना का हर निशान मिटा डालने की तत्परता दिखलानी होगी। प्रत्येक समुदाय अपने अन्तर्गत आने वाले हर अल्पसंख्यक के पालन, प्रोत्साहन और प्रतिरक्षण को अपना प्रथम और अनिवार्य दायित्व माने। प्रत्येक व्यक्ति जो भारत में सच्चे साम्प्रदायिक सद्भाव को प्रोत्साहित और स्थापित करने जैसे महान कार्य में हाथ बंटाने का इच्छुक है, उसे चाहिए कि वह जातीय और धार्मिक पूर्वाग्रहों से संबंधित वैज्ञानिक अध्ययनो की पूरी जानकारी रखे। आदिकाल से ही भारत के महान साधु–संतों तथा समाज सुधारकों ने यही शिक्षा दी है कि मानव धर्म ही अच्छे कार्यों और अच्छे आचार की उत्प्रेरणा का माध्यम है जो विभिन्न वर्गों के पूर्वाग्रहों और उनसे उत्पन्न भेदभाव को दूर करने के लिए अनिवार्य है।

साभार

अपने बच्चों को पहले **पाँच साल** तक **खूब प्यार** करो।
छः साल से **पन्द्रह साल** तक
कठोर **अनुशासन** और **संस्कार** दो
सोलह साल से उनके साथ **दोस्ती** करो
आपकी **संतान** ही आपकी **सबसे अच्छी दोस्त** है।

– चाणक्य

पंजीयन संख्या
RNI No. MPHIN/2002/9510

डाक पंजीकृत क्रमांक मालवा डिवीजन/204/2021-2023 उज्जैन (म.प्र.)

प्रतिष्ठा में ,

पत्र व्यवहार का पता :
20, बागपुरा, सांवेर रोड,
उज्जैन 456 010 (म.प्र.)

प्रकाशक, मुद्रक **पिंकी सत्यप्रेमी** ने भारती दलित साहित्य अकादमी की ओर से
मालवा ग्राफिक्स, 29, वररुचि मार्ग, गुरुद्वारे के सामने, फ्रीगंज, उज्जैन फोन : 0734-4000030 से मुदित एवं
20, बागपुरा, सांवेर रोड, उज्जैन 456 010 (म.प्र.) फोन : 0734-2518379 से प्रकाशित।

सम्पादक : डॉ. तारा परमार